वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक १०
अक्तूबर २०२२

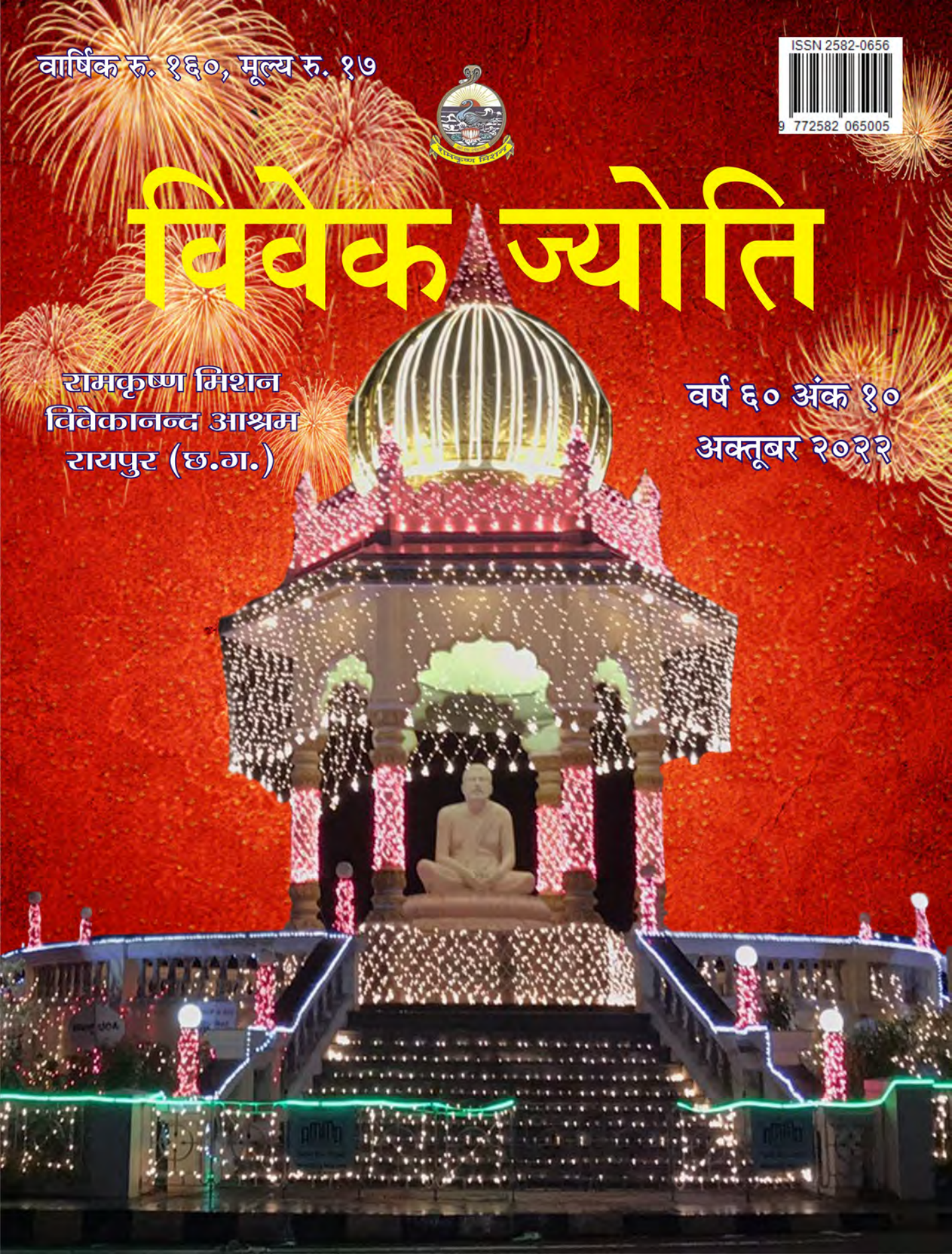

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक १०

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

अनुक्रमणिका

* शक्ति उपासना की महिमा : विवेकानन्द ४३८
* स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ४४१
* या देवी सर्वभूतेषु... (स्वामी अलोकानन्द) ४४८
* (बच्चों का आंगन) कर्नाटक के भगीरथ विश्वेश्वरय्या (स्वामी गुणदानन्द) ४५६
* भगवान का नाम व्यर्थ नहीं जाता (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४५८
* (युवा प्रांगण) मैं आपको संस्कृत में पत्र लिखता था (स्वामी अनिलयानन्द) ४५९
* डुबकी लगाओ (भिक्षु विशुद्धपुत्र) ४६१
* काली-स्तवनम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ४४५
* (कविता) जयतु जयतु जय दुर्गे माता (ओमप्रकाश वर्मा) ४४५
* (कविता) अनन्तरूपिणी है माँ श्यामा (ओमप्रकाश वर्मा) ४५७
* (कविता) मैं तो अंश तुम्हारा (मोहन सिंह मनराल) ४५७

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४३७
पुरखों की थाती ४३७
सम्पादकीय ४३९
आध्यात्मिक जिज्ञासा ४४६
प्रश्नोपनिषद् ४५४
श्रीरामकृष्ण-गीता ४५७
रामराज्य का स्वरूप ४६६
गीतातत्त्व-चिन्तन ४६९
सारगाछी की स्मृतियाँ ४७२
साधुओं के पावन प्रसंग ४७४
समाचार और सूचनाएँ ४७७

आश्विन, सम्वत् २०७९

अक्तूबर २०२२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	श्रीश्री दुर्गामहाष्टमी
२४	श्रीलक्ष्मी पूजा/दीपावली
६, २१	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८,०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें।

– व्यवस्थापक

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

किसी भी सार्वजनिक स्थल में स्थापित श्रीरामकृष्ण देव की यह पहली मूर्ति है। यह श्रीरामकृष्ण सर्कल, श्रीरामकृष्ण नगर, मैसुरु में स्थित है। इस मूर्ति का उद्घाटन The Mysuru Urban Development Authority (MUDA) द्वारा आयोजित कार्यक्रम में कर्नाटक के मुख्यमन्त्री श्री सिद्धरमैया द्वारा ५ मार्च, २०१८ को किया गया। रामकृष्ण संघ के स्वामी आत्मज्ञानन्द तथा अन्य संन्यासीवृन्द, अनेक गणमान्य व्यक्ति तथा भक्त इस कार्यक्रम में उपस्थित थे।

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु **मात्र १८००/-** रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में **१० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति'** प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**
रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **अक्तूबर २०२२** **अंक १०**

गौरी-स्तुतिः

नित्यः शुद्धो निष्कल एको जगदीशः
साक्षी यस्याः सर्गविधौ संहरणे च ।
विश्वत्राणक्रीडनलोलां शिवपत्नीं
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे ।।

– जिस माता गौरी के सृष्टि, स्थिति व संहार के समय नित्य, शुद्ध, बुद्धस्वरूप केवल एक जगदीश्वर ही साक्षी होते हैं और जो देवी समस्त संसार के परिपालन हेतु अपने लास्य-ललित-नृत्य विशेष से उल्लसित होती है, उस शिव पत्नी भवानी कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ ।

पुरखों की थाती

कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ।।७७५।।

– कोयलों का सौन्दर्य उनकी मधुर वाणी में है, नारियों का सौन्दर्य उनके पातिव्रत्य-गुण में है, ज्ञान ही कुरूप लोगों का सौन्दर्य है और तपस्वियों का सौन्दर्य उनके क्षमा-भाव में निहित है।

कृते प्रतिकृतिं कुर्यात् हिंसेन प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दौष्ट्यं समाचरेत्।।७७६।।

– जो कोई हमारा भला करे, हमें उसकी भलाई करनी चाहिए, जो हिंसक-स्वभाव का है, उसके प्रति हिंसा करनी चाहिए और दुष्ट के साथ दुष्टता ही करनी चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं होता।

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।।७७७।।
(विदुर)

– ज्ञानियों के ज्ञान की मुख्य पहचान यह है कि वे किसी भी विषय को शीघ्र समझ लेते हैं तथापि उसे धैर्यपूर्वक देर तक सुनते रहते हैं। वे किसी कामना की पूर्ति के लिए नहीं, ज्ञानपूर्वक ही उद्देश्यप्राप्ति हेतु अग्रसर होते है। विद्‌वान की यही प्रमुख मेधा होती है।

शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं : विवेकानन्द

शक्ति-पूजा केवल काम-वासनामय नहीं है। यह शक्ति-पूजा कुमारी-सधवा-पूजा है, जैसी हमारे देश में काशी, कालीघाट प्रभृति तीर्थ-स्थानों में होती है, यह काल्पनिक नहीं, वास्तविक शक्ति-पूजा है। किन्तु हम लोगों की पूजा इन तीर्थ-स्थानों में ही होती है और केवल क्षण भर के लिए, पर इन लोगों की पूजा दिन-रात बारहों महीने चलती है। पहले स्त्रियों का आसन होता है। कपड़ा, गहना, उच्च स्थान, आदर और स्वागत पहले स्त्रियों की। यह शक्ति-पूजा प्रत्येक नारी की पूजा है, चाहे परिचित हो या अपरिचित। उच्च कुल की और रूपवती युवतियों की तो बात ही क्या है ! (विवेकानन्द साहित्य १०/९१)

वर्तमान युग में अनन्त शक्तिस्वरूपिणी जननी के रूप में ईश्वर की उपासना करना उचित है। इससे पवित्रता का उदय होगा और इस मातृ-पूजा से अमेरिका में महाशक्ति का विकास होगा। ...नारियों ने सैकड़ों युगों तक दुख-कष्ट सहन किये हैं, इसी से उनके भीतर असीम धैर्य और अध्यवसाय का विकास हुआ है।

वे किसी भी भाव को सहज ही छोड़ना नहीं चाहतीं। इसीलिये वे अंधविश्वासी धर्मों एवं सभी देशों के पुरोहितों की मानो आधार हो जाती हैं, यही बाद में उनकी स्वाधीनता का कारण होगा। हमें वेदान्ती होकर वेदान्त के इस महान् भाव को जीवन में परिणत करना होगा। निम्न श्रेणी के मनुष्यों में भी यह भाव वितरित करना होगा, यह केवल स्वाधीन अमेरिका में ही कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है। भारत में बुद्ध, शंकर तथा अन्यान्य महा मनीषी व्यक्तियों ने इन सभी भावों का लोगों में प्रचार किया था, किन्तु जनता उन भावों को धारण नहीं कर सकी। इस नूतन युग में जनता वेदान्त के आदर्शानुसार जीवन-यापन करेगी और यह नारियों के द्वारा ही कार्य रूप में परिणत होगा।

'हृदय में सहेज रखो सुन्दरी प्यारी श्यामा माँ को,
वाणी को छोड़ फेंक दो शेष सब,
और वाणी से कहलाते रहो – माँ, माँ!
कुमंत्रियों को न पास भी फटकने दो,
मैं और मेरे हृदय ! हमीं दोनों एकान्त दर्शन पाते रहें माँ का !
जो कुछ जीवन्त है, तू उसके परे है!
ओ मेरे जीवन की चाँद, मेरी आत्मा की आत्मा।'

(वि.सा. ७/१११/१२)

'माँ का स्वरूप तत्त्वत: क्या है, तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो, तुममें से एक भी नहीं। किन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे। भाई, शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधम है, शक्तिहीन है, पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति की अवमानना होती है। उस महाशक्ति को भारत में पुन: जाग्रत करने के लिए श्रीमाँ (सारदा देवी) का आविर्भाव हुआ है और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से जगत् में गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म होगा। ...माँ के न रहने से सर्वनाश हो जायेगा। शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप में क्या देख रहा हूँ? – केवल शक्ति की उपासना। ... माँ की कृपा मेरे ऊपर पिता की कृपा से लाखगुनी है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिये सर्वोपरि है। (वि. सा. २/३६०-६१)

सम्पादकीय

लोक संस्कृति में शक्ति की आराधना

शक्ति एक है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति अनेक है। शक्तिरूपिणी माँ दुर्गा के रूप अनन्त हैं। इसलिये उन्हें अनन्तरूपिणी कहते हैं। उनकी लीला अनन्त है। उनकी कृपा भी अनन्त है। एक ही शक्ति विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होकर विभिन्न प्रकार से लोकमंगल करती है। ऐसे भी कह सकते हैं कि भक्तों की आवश्यकतानुसार उन्हें त्राण करने हेतु उस परम शक्ति ने विभिन्न रूप धारण किये। यह शक्ति शास्त्रों में दस महाविद्या, महामाया, नवदुर्गा आदि नामों से प्रथित हुई।

भारतीय संस्कृति में देवी के रूप में शक्ति की आराधना सर्वविदित है। जनमानस में शक्ति की आराधना दुर्गा, काली, उमा, गौरी, चण्डी, मनसा के रूप में प्रथित है। माँ दुर्गा की आराधना भी दस महाविद्या के रूप में की जाती है। भक्तों के कल्याणार्थ इसी दुर्गा शक्ति ने महाकाली का रूप धारण कर असुर-संहार कर अपने भक्तों की रक्षा की।

किन्तु जब हम लोक संस्कृति से सम्पृक्त होते हैं, तब हमें शक्ति-आराधना के अन्य विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। विभिन्न देश-काल में विभिन्न नामों और रूपों में देवी की अर्चना के दृष्टान्त मिलते हैं।

नवरात्रि में देवी के गीत में दुर्गा, गौरी, उमा, पार्वती के नामों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। असम में कामाख्या देवी, बिहार में पटन देवी, थावे सिंहासनी काली माई आदि, झारखण्ड में राँची में छिन्नमस्ता देवी, उत्तर प्रदेश में काशी का दुर्गामन्दिर, विन्ध्याचल की देवी, देवरिया की कुलकुला देवी, कोलकाता में कालीघाट की काली माई, दक्षिणेश्वर की काली माँ, तारापीठ, मध्यप्रदेश में मैहर माता, महाराष्ट्र में चन्द्रपुर में महाकाली, गुजरात में पवागढ़ में कालिकामाता राजस्थान में करणी देवी, जम्मू की वैष्णवी देवी, कश्मीर की क्षीर भवानी आदि स्थान हैं, जहाँ माँ ने अपनी शक्ति अभिव्यक्त की।

इसके अतिरिक्त माँ विभिन्न नामों से स्व-महिमा प्रकट कर भक्तों की आस्था की केन्द्र बनीं। उत्तराखण्ड में माँ के भिन्न नामों से प्राकट्य का विवरण मिलता है। पवनेश ठकुराठी जी अपने निबन्ध 'उत्तराखण्ड में शैव, वैष्णव और शाक्त देवी-देवताओं की पूजन परम्परा' में लिखते हैं – ''शक्ति या देवताओं की उपासना करनेवाले शाक्त कहे जाते हैं। उत्तराखण्ड में प्राचीनकाल से ही शाक्त उपासना के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ प्राकृतिक शिला, काष्ठ-स्तम्भ, प्रतिमा और यन्त्र रूप में शक्ति के विविध रूपों की पूजा की जाती है। काली मठ, बूढ़ा भरसार, उल्का देवी और पाषाण देवी में शक्ति के शिला के रूपों में, सिमली, चाँदपुर, अलमोड़ा, नैनीताल में नन्दा-सुनन्दा की स्तम्भ रूप में, देवलगढ़, नौटी, हाटकाली, बुग्याली, घोल में श्रीयन्त्र रूप में तथा दुर्गा, पार्वती, चण्डिका, वाराही, महिषमर्दिनी, उमा, गौरी आदि की प्रतिमा रूप में, सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में पूजा प्रचलित है।

''...यहाँ देवी की प्रतिमाओं में दुर्गा का सिंहवाहिनी स्वरूप, महिषासुरमर्दिनी, बैजनाथ की प्रतिमा व जागेश्वर की चामुण्डा प्रतिमाएँ प्रमुख हैं।

''... शाक्त सम्प्रदाय के पौराणिक देवी रूपों के अतिरिक्त उत्तराखण्ड में कई स्थानीय देवियों की भी शक्ति रूप में पूजा होती है। कहीं इनके मन्दिर हैं, कहीं केवल पाषाण खण्ड या थान स्थापित हैं। शक्ति के इन स्थानीय रूपों में चम्पा, झूमा, हिंगला, कोटनी, हिडिम्बा, झालीमाल (चम्पावत), मल्लिका, कोकिला, कोटगाड़ी, उल्का, गड़देवी (पिथौरागढ़), रणचूला, जाखनदेवी, नैथाड़ा, शीतला, स्याहीदेवी, वानरी देवी, (अलमोड़ा), रेणुका, राजराजेश्वरी, सुरकण्डा (गढ़वाल) आदि देवियाँ प्रमुख हैं।'' इस प्रकार उत्तराखण्ड में शक्ति के पार्वती, गिरिजा, हाटकाटी, कोटभ्रमारी, राजराजेश्वरी, ज्वाला, कामाख्या, जयन्ती, अम्बिका, दुर्गा, उमा, गौरी, महाकाली, उल्का, चण्डी, मनसा, नन्दा, त्रिपुरसुन्दरी, धारी, सुरकुण्डा आदि विभिन्न रूपों के सैकड़ों मन्दिरों का होना इस बात को सिद्ध करता है कि यहाँ प्राचीन काल से आज भी शक्ति की उपासना लोगों के धार्मिक जीवन का आधार है।'' (वैचारिकी, मार्च-अप्रैल-२०२२,पृ.७३-७४)

केवल एक राज्य का इतना विस्तृत विवरण है। ऐसे सभी राज्यों में और अन्य देशों में शक्ति की विभिन्न रूपों में उपासना होती है। उन सबका उल्लेख यहाँ असम्भव है।

जहाँ एक ओर प्रबुद्ध जन, शिक्षित विद्वान और पण्डितवृन्द माँ की अर्चना शास्त्रीय ढंग से वेद मन्त्रों के पाठ द्वारा करते हैं, विभिन्न स्तोत्रों और मुद्राओं से करते हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण माताएँ अपनी शुद्ध भावनाओं से अपने घर में बनाये आटे, घी और गुड़ की रोटियाँ बनाकर लोकभाषा में दुर्गा माँ की महिमा-कृपाविषयक लोकगीतों को गाते हुए माँ की पूजा, आराधना करती हैं। बड़ी विलक्षण बात यह है कि उन्हें अपनी इसी श्रद्धामयी पूजा से जीवन में माँ की कृपा की अनुभूति होती है। इस पूजा से वे अपने जीवन में, परिवार-पड़ोस-परिजन में शान्ति का अनुभव करती हैं। शारदीय नवरात्र में गाँव की माताएँ अपने-अपने घरों से गेहूँ के आटे, घी, गुड़ की रोटी बनाकर दुर्गा-मन्दिर में चढ़ाने के लिये जब ये गीत गाते हुए जाती हैं, तो वह श्रद्धा-भावना देखते बनती है –

नीमियाँ के डाढ़ि मैया झूलेली हिड़ोलवा से झूली झूली ना।
मैया गावेली गीतिया से झूली झूली ना।।
झूलत झूलत मैया के लगली पिअसिया से चली रे भइली ना।
मलहोरिया दुअरिया मैया चली रे भइली ना।।...

अनन्तरूपिणी माँ की अनन्त कृपा

अनन्तरूपिणी माँ की कृपा भी अनन्त रूपों में भक्तों के जीवन में हुई। पुराकाल में माँ ने दुर्गा-काली का रूप धारण कर सुरों की असुरों से रक्षा की। लेकिन साधारण मानव के जीवन में माँ ने सामान्य मानवी रूप धारण कर उनकी सहायता की। रामप्रसाद के साथ देवी स्वयं उनकी कन्या बनकर उनके साथ टाट बीनती थीं। प्रेम के वशीभूत हो माँ अपने आराधकों के साथ खेलती थीं। श्रीमाँ सारदा जब छोटी थीं, तब उनके साथ अष्टसखियाँ स्नान करने जाती थीं। कितने भक्तों को माँ ने उनके घोर संकटों में विभिन्न रूपों में आकर त्राण किया, रोग के दारुण कष्ट से मुक्त किया। इसके असंख्य दृष्टान्त हैं। आर्त दर्शनार्थी को समस्त लौकिक नियमों को तोड़कर माँ ने दर्शन दिया। अनेक घटनाओं में एक घटना संक्षेपत: उल्लेखनीय है, जो कल्याण मासिक में प्रकाशित है।

एक माताजी को महाराष्ट्र के चन्द्रपुर स्थित महाकाली के दर्शन की तीव्र इच्छा हुई। विषम परिस्थिति में उन्हें ट्रेन मिल गयी। उनके साथ उनका नौकर था। आते समय उन्हें वहाँ रहने की व्यवस्था के लिये किसी सम्बन्धी ने एक पत्र लिख दिया। उन्होंने वह पत्र तो लिया, लेकिन ट्रेन में बैठने पर फाड़कर फेंक दिया। क्योंकि वे माँ काली को अपना पीहर मानती थीं। बेटी अपनी माँ के पास रुकेगी, अन्यत्र क्यों! ऐसी भावना थी। वे रात के तीन बजे चन्द्रपुर पहुँची और ताँगे से सीधे महाकाली मन्दिर पहुँच गयीं। चैत्र का महीना था। बहुत भीड़ थी। मन्दिर बन्द था। पुजारी को पुकारीं, लेकिन कोई नहीं सुना। सब लोग सो रहे थे। वे थककर एक शिला से टेककर बैठ गयीं, इस संकल्प के साथ कि देवी के दर्शन किये बिना नहीं सोऊँगी। पता नहीं कब उन्हें झपकी लग गयी। तो क्या देखती हैं? उन्हीं के शब्दों में – ''मन्दिर की विपरीत दिशा से भगवती महामाया काली नील-वर्णा केश छिटकाये, मुण्डमाला पहने, चतुर्भुजी हाथ में अग्नि से भरा हुआ लाल-लाल खप्पर लिये, जिसमें से विकराल ज्वाला उठ रही थी, मेरी ओर आ रही हैं। मैं उठी और ज्यों ही चरण पकड़ने दौड़ी, त्यों ही वे कहने लगीं – 'हैं, हैं ! यह तो स्वप्न है। तुम जाकर जाग्रत अवस्था में ठीक इसी प्रकार मेरे दर्शन करो।' मेरी नींद खुल गयी। मैं 'भवानी भवानी' चिल्लाती हुई दौड़ने लगी। नौकर भी जगकर मुझे पुकारता हुआ मेरे पीछे भागा। मैं ज्यों-ज्यों आगे सरकती थी, स्वप्न की वह मूर्ति भी मेरे सामने आगे की ओर बढ़ती जाती थी और मुसकुराती जाती थी। मैं उनके चरण पकड़ने को व्याकुल हो रही थी। मैं पागल की भाँति कह रही थी – 'देवी ! मुझे डर लग रहा है। मुझ पर दया करो और अपने सौम्य रूप का दर्शन कराओ।'' उसके बाद पुजारी को स्वप्न में माँ ने अपने भक्त को दर्शन कराने का निर्देश दिया। पुजारी उठकर दौड़े और शोर-गुल में लालटेन के प्रकाश में माताजी को पहचान लिया। माताजी ने घोर रात में बावली में स्नान कर पुजारी के साथ मन्दिर में जाकर दिव्य तेजोमयी पाषाण-प्रतिमा के दर्शन किये। यहाँ माँ काली ने भक्त को अपने दिव्य रूप और भव्य पाषाणरूप दोनों का विशेष दर्शन विशेष परिस्थिति में कराया। माँ की कृपा कब किस पर किस रूप में प्रकट हो कौन जानता है। ऐसी शक्तिरूपिणी कृपामयी माँ काली के चरणों में कोटिश: प्रणाम ! ○○○

महात्मा गाँधी जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

स्वामीजी का सन्देश गाँधीजी का जीवन

आज से लगभग १२५ वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने पूरे देशवासियों का आह्वान किया था – ''हे भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है, तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। हे वीर ! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं, तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ

मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशु-सज्जा, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्द्धक्य की वाराणसी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन कहते रहो कि – 'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ।''[१]

आश्चर्य की बात है कि कुछ ही वर्षों में स्वामीजी की वह भविष्यवाणी साकार हो उठी। एक व्यक्ति कमर पर छोटा-सा उपवस्त्र धारण किये, गाँव-गाँव, गली-गली घूमकर यही बात जोर-शोर से दुहराने लगा – ''प्रत्येक भारतवासी से मेरी बन्धुता है।'' वे हैं – राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी। इन दोनों महापुरुषों के राष्ट्रीय जीवन एवं दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये, तो प्रतीत होगा कि गाँधीजी का जीवन, स्वामीजी के विचारों का प्रतिरूप ही है।

दोनों महानुभाव समकालीन होते हुये भी कभी एक-दूसरे से मिल नहीं पाये। गाँधीजी स्वामीजी से छः वर्ष छोटे थे। गाँधीजी ने स्वामीजी को दक्षिण अफ्रीका में एक धर्म-प्रचारक के रूप में आमंत्रित किया था। किन्तु स्वामीजी जा नहीं सके। कलकत्ता में जनवरी, १९०२ में गांधीजी कांग्रेस अधिवेशन के लिये आये थे। बेलूड़ मठ भी गये, पर स्वामीजी अस्वस्थ होने के कारण उनसे नहीं मिल सके। तत्पश्चात् छः महीने बाद स्वामीजी का निधन हो गया।

दोनों के विचारों एवं आदर्शों में अद्भुत साम्य था। स्वामीजी के स्वाधीनता, नारी-उत्थान, जनजागृति, सर्वधर्मसमन्वय, सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा, दरिद्रनारायण की सेवा, अस्पृश्यता निवारण आदि विचारों को मूर्त करने के लिये ही मानो गाँधीजी का जन्म हुआ था।

दो महान देशभक्त

मद्रास में स्वामीजी ने 'मेरी समर योजना' विषय पर भाषण देते हुये सच्चे देशभक्त की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी थी – ''ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें

आज पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को अच्छादित कर लिया है? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है? क्या उसने तुम्हें पागल-सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो? क्या तुमने ऐसा किया है? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है – हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर !

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? क्या उनके दुखों को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाये, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे पुत्र-कलह तुम्हारे प्रतिकूल हो जायँ, भाग्यलक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाये, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी क्या तुम उस सत्य में संलग्न रहोगे? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? जैसाकि महान् राजा भर्तृहरि ने कहा है, 'चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आये या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाये, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है, जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।'' क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? बस यही तीसरी बात है।[२]

स्वामीजी ने सच्चे देशभक्त के लिये तीन बातें अनिवार्य समझी थीं। १. देशवासियों से प्रेम २. उनकी कष्टमुक्ति हेतु सुनियोजित योजना और ३. दृढ़ इच्छा-शक्ति ! इन तीनों शर्तों पर खरे उतरनेवाले ऐसे देशभक्त स्वामीजी के बाद केवल गाँधीजी ही थे। गाँधीजी ने स्वयं स्वीकार किया था कि स्वामीजी के प्रेरक साहित्य से उनकी शक्ति सहस्र गुना बढ़ गई थी।

दक्षिण अफ्रीका के विषय में स्वामीजी

भारत की नियति तो देखिये भारतमाता को विदेशी संस्कृति, विदेशी शासन, विदेशी धर्म-परम्पराओं से विमुक्त करने के लिये स्वतन्त्रता की खोज में दो महान विभूतियों को एक साथ ही विदेश भेजा। यह वह अद्भुत योगायोग ही माना जायेगा। सन् १८९३ में स्वामीजी विश्व धर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिये अमरीका गये। पूरे विश्व में उन्होंने भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म की अस्मिता की कीर्तिपताका फहराई। उसी साल गाँधीजी अफ्रीका गये तथा ब्रिटीश सत्ता के सामने असहयोग-आन्दोलन चलाया। गाँधीजी को शायद ही यह अनुमान होगा कि उनका रंगभेद के विरुद्ध अफ्रीका में किया गया कार्य आगे चलकर देश में स्वराज्य-आन्दोलन की नींव बनेगा। इसके संकेत स्वामीजी ने आश्चर्यजनक रूप से बहुत पहले ही दे दिये थे। युगद्रष्टा स्वामीजी को विश्वास था कि दक्षिण अफ्रीका में किया गया कार्य भारत के लिये सर्वाधिक कल्याणकारी सिद्ध होगा। स्वामीजी अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्द को दक्षिण अफ्रीका इसीलिये भेजना चाहते थे। यद्यपि यह काम सम्भव नहीं हो पाया। स्वामीजी ने स्वामी शिवानन्द को २९ दिसम्बर, १८९६ में एक पत्र में लिखा – ''बम्बई के गिरगाँव निवासी श्री शेतलूर ने, जिनके साथ मद्रास में रहते समय तुम्हारा घनिष्ठ परिचय हुआ था, अफ्रीका में रहनेवाले भारतवासियों के आध्यात्मिक अभाव को दूर करने के निमित्त किसी को

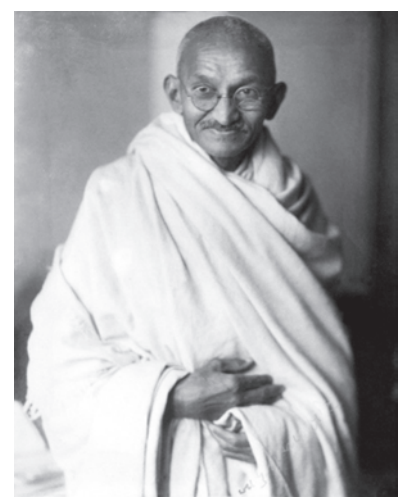

वहाँ भेजने के लिए लिखा है। यह निश्चित है कि वे ही उस मनोनीत व्यक्ति को अफ्रीका भेजेंगे एवं उसका समस्त व्यय-भार स्वयं ग्रहण करेंगे।''[३]

इतिहास साक्षी है कि स्वामीजी की यह पूर्वधारणा कितनी खरी उतरी थी ! दक्षिण अफ्रीका का कार्य ही भारत की स्वाधीनता एवं सत्याग्रह आन्दोलन की नींव बना था। यह अद्भुत कार्य एक पूर्ण प्रतिभावान मनुष्य महात्मा गाँधी के द्वारा सम्पन्न हुआ।

गाँधीजी की अभिनव क्षमता का परिचय स्वामीजी को अचानक ही हो गया था। ठीक वैसे ही गाँधीजी ने स्वामीजी की असाधारण योग्यता का परिचय पाया था। गाँधीजी कहते थे कि स्वामीजी दक्षिण अफ्रीका आयें। बम्बई हाईकोर्ट के वकील श्री बी.एन. भाजेकर को गाँधीजी ने २३ फरवरी, १८६८ के पत्र में लिखा था – ''यूरोपियन पद्धति से कार्य करनेवाला धर्मोपदेशक यहाँ सफल नहीं होगा। क्या स्वयं स्वामीजी को ही इधर आने का अनुरोध नहीं किया जा सकता? उनके कार्य को सफल करने के लिये मैं सबकुछ करूँगा। वे भारतीय और यूरोपियन दोनों के बीच आसानी से कार्य कर पायेंगे। वे निम्नतम एवं उच्चतम दोनों प्रकार के भारतीयों के बीच मुक्त विचरण कर रहे हैं। यदि वे आयें, तो एक बात निश्चित हो पायेगी। वे ब्रिटिशियों को अपनी अद्भुत वाक्शक्ति से अभिभूत कर देंगे। शायद उन्हें सम्मोहित करके इन कुलियों को अनुयायी भी बना सकते हैं। आप इस पत्र को स्वामीजी के पास भी भेज सकते हैं।'' यह पत्र भाजेकर ने स्वामीजी के पास पहुँचा दिया था। उन दिनों स्वामीजी कश्मीर यात्रा पर थे। चाहते हुये भी स्वामीजी दक्षिण अफ्रीका नहीं जा सके।

सच्चे महात्मा

गाँधीजी को हमने महात्मा कहकर पुकारा। उससे कई वर्ष पहले स्वामीजी ने 'महात्मा' शब्द को जिस तरह परिभाषित किया था, उसे देखकर तो यही प्रतीत होता है कि वह बात गांधीजी को लक्षित करके ही कही गई थी। स्वामीजी ने १८६४ के एक पत्र में लिखा था – ''भारत में और यहाँ महान अन्तर है। बीस करोड़ नर-नारी, जो सदा गरीबी और मूर्खता के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? उनके उद्धार का क्या उपाय है? कौन उनके दुख में दुखी है। वे अंधकार से प्रकाश में नहीं आ सकते, उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त होती, उन्हें कौन प्रकाश देगा, कौन उन्हें द्वार–द्वार शिक्षा देने के लिए घूमेगा? ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरन्तर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो, प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।

''मैं धनवान और उच्च श्रेणी की अपेक्षा इन पीड़ितों को ही धर्म का उपदेश देना पसन्द करता हूँ। मैं न कोई तत्त्व-जिज्ञासु हूँ, न दार्शनिक हूँ और न सिद्ध पुरुष हूँ। मैं निर्धन हूँ और निर्धनों से प्रेम करता हूँ। इस देश में जिन्हें गरीब कहा जाता है, उन्हें देखता हूँ। भारत के गरीबों की तुलना में इनकी अवस्था अच्छी होने पर भी यहाँ कितने लोग उनसे सहानुभूति रखते हैं। मैं उसी को महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिये द्रवित होता है, अन्यथा वह दुरात्मा है।''[४]

स्वामीजी की तरह गाँधीजी ने भी अपना जीवन दीन-दलितों की सेवा में समर्पित कर दिया। दोनों महापुरुषों में गरीबों के प्रति संवेदना का कारण भी एक ही था। दोनों ने भारत के दीनदुखियों का जीवन बहुत समीप से देखा था। श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बाद स्वामी विवेकानन्द जी ने पूरे भारत का परिभ्रमण एक परिव्राजक के रूप में किया। साधारण जनता के जीवन का, उनकी समस्याओं का स्वामीजी ने निकट से अवलोकन किया था। गाँधीजी ने भी दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भ्रमण किया और जनता का दुख-दर्द आत्मसात् करने का प्रयास किया था।

दरिद्रनारायण की सेवा

आचार्य विनोबा भावे ने लिखा था – 'दरिद्रनारायण' शब्द स्वामी विवेकानन्द ने विशेष रूप से प्रदान किया है। यह शब्द तिलक को अत्यन्त प्रिय था। देशबन्धु चित्तरंजन दास ने उसे जनप्रिय बना दिया। गाँधीजी उसे घर-घर ले गये और उसी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम भी बनाये।

फ्रेन्च मनीषी रोमॉ रोलॉ ने किसी बातचीत के दौरान दीनबन्धु एन्ड्रोज से पूछा – गाँधीजी को स्वामीजी के साथ जोड़नेवाला बन्धन कौन-सा है? प्रत्युत्तर में सीना ठोक उन्होंने बताया कि ''स्वामी विवेकानन्द से ही उन्होंने 'नर-नारायण, आर्त-नारायण, दरिद्र-नारायण'' का महामन्त्र पाया था।

स्वामीजी और गाँधीजी; दोनों ने सेवा का उपदेश दिया था। उसी के अनुसार अपने जीवन में आचरण भी किया।

गाँधीजी के प्रमुख कार्यों में दक्षिण अफ्रीका में गरीबों की सहायता, दरिद्रों की सेवा, मजदूरों को शोषणमुक्त करना है। ये सारी बातें आज सर्वविदित हैं। स्वामीजी का जीवन भी ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिनमें गरीबों के प्रति अपार करुणा की भावना दृष्टिगोचर होती है। दरिद्रनारायण अर्थात् दीन-दरिद्रों में विद्यमान भगवान की सेवा।

स्वामीजी १९०२ में पूर्व बंगाल से वापस आने के बाद बेलूड़ मठ में रहते थे और बच्चों जैसा जीवन व्यतीत करते थे। उस समय की निम्नलिखित घटना स्वामीजी के दीनों के प्रति प्रेम को प्रकट करता है – ''मठ की जमीन की सफाई तथा मिट्टी खोदने और बराबर करने के लिए प्रति वर्ष ही कुछ सन्थाल स्त्री-पुरुष कुली आया करते थे। स्वामीजी, उनके साथ कितना हँसते-खेलते रहते और उनके सुख-दुख की बातें सुना करते थे। एक दिन कलकत्ते से कुछ विख्यात व्यक्ति मठ में स्वामीजी के दर्शन करने के लिए आये। उस दिन स्वामीजी उन सन्थालों के साथ बातचीत में ऐसे मग्न थे कि स्वामी सुबोधानन्द ने जब आकर उन्हें उन सब व्यक्तियों के आने का समाचार दिया, तब उन्होंने कहा, ''मैं इस समय मिल न सकूँगा, इनके साथ बड़े आनन्द में हूँ।'' वास्तव में उस दिन स्वामीजी उन सब दीन-दुखी सन्थालों को छोड़कर उन व्यक्तियों के साथ मिलने नहीं गये।

सन्थालों में एक व्यक्ति का नाम था 'केष्टा'। स्वामीजी केष्टा को बड़ा प्रेम करते थे। बात करने के लिये आने पर केष्टा कभी-कभी स्वामीजी से कहा करता था, ''अरे स्वामी बाप ! तू हमारे साथ काम के समय यहाँ न आया कर। तेरे साथ बात करने से हमारा काम बन्द हो जाता है और बूढ़ा बाबा आकर फटकार लगाता है।'' स्वामीजी इन शब्दों को सुनकर व्यथित हो उठते और कहते – ''नहीं, वे कुछ नहीं कहेंगे, मैं उनसे बोल दूँगा। तुम अपने देश की कुछ बातें बता।'' यह कहकर उसके पारिवारिक सुख-दुख की बातें छेड़ देते।

एक दिन स्वामीजी ने केष्टा से कहा, ''अरे, तुम लोग हमारे यहाँ खाना खाओगे?'' केष्टा बोला, ''हम अब और तुम लोगों का छुआ नहीं खाते, ब्याह जो हो गया है। तुम्हारा छुआ नमक खाने से जात जायेगी रे बाप !'' स्वामीजी ने कहा, ''नमक क्यों खायेगा रे? बिना नमक डालकर तरकारी पका देंगे, तब तो खायेगा न?'' केष्टा उस बात पर राजी हो गया। इसके बाद स्वामीजी के आदेश से मठ में उन सब सन्थालों के लिए पूड़ी, तरकारी, मिठाई, दही आदि का प्रबन्ध किया गया और वे उन्हें बिठाकर खिलाने लगे। खाते–खाते केष्टा बोला, हाँ रे, स्वामी बाप ! तुमने ऐसी चीजें कहाँ से पायी है, हमलोगों ने कभी ऐसा नहीं खाया।'' स्वामीजी ने उन्हें तृप्तिभर भोजन कराकर कहा, ''तुम लोग तो नारायण हो, आज मैंने नारायण को भोग दिया।'' स्वामीजी जो दरिद्र-नारायण की सेवा की बात कहा करते थे, उसे वे इसी प्रकार स्वयं करके दिखा गये हैं।

भोजन के बाद जब सन्थाल लोग आराम करने गये, तब स्वामीजी ने शिष्य से कहा, ''इन्हें देखा, मानो साक्षात् नारायण हैं। ऐसा सरल चित्त ! ऐसा निष्कपट सच्चा प्रेम ! कभी नहीं देखा था।''[५]

अछूतों के प्रति करुणा

स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी दोनों का हृदय अस्पृश्यों के प्रति करुणा से परिपूर्ण था। इसी करुणा से द्रवित होकर स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था – ''देश इन गरीब-दुखियों के लिए कुछ नहीं सोचता है रे! जो लोग हमारे राष्ट्र की रीढ़ हैं, जिनके परिश्रम से अन्न पैदा हो रहा है, जिस मेहतर डोमों के एक दिन के लिए भी काम बन्द करने पर शहर भर में हाहाकार मच जाता है, हाय ! हम क्यों न उनके साथ सहानुभूति करें, सुख-दुख में उन्हें सान्त्वना दें ! क्या देश में ऐसा कोई भी नहीं है रे ! यह देखो न – हिन्दुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रान्त में हजारों पैरिया ईसाई बने जा रहे हैं, पर ऐसा न समझना कि केवल पेट के लिए ईसाई बनते हैं। असल में हमारी सहानुभूति न पाने के कारण वे ईसाई बनते हैं। हम दिन-रात उनसे केवल यही कहते रहे हैं, 'छूओ मत, छूओ मत।' देश में क्या अब दया-धर्म है भाई? केवल छूआछूत-पन्थियों का दल रह गया है ! ऐसे आचार के मुख पर मार झाड़ू, मार लात ! इच्छा होती है – तेरे छूआछूत-पन्थ की सीमा को तोड़कर अभी चला जाऊँ – 'जहाँ कही भी पतित, गरीब, दीन, दरिद्र हो, आ जाओ', यह कह-कहकर, उन सभी को श्रीरामकृष्ण के नाम पर बुला लाऊँ। इन लोगों के बिना उठे माँ नहीं जागेगी। हम यदि इनके लिए अन्न-वस्त्र की सुविधा न कर सके, तो फिर हमने क्या किया? हाय ! ये

शेष भाग पृष्ठ ४५५ पर

कालीस्तवनम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

वशे यस्याः कालः कलयति विधातव्यसकलं
सुराणां भक्तानां निखिलविपदः वारयति या ।
त्रिलोके निश्चिन्ताः प्रणतहृदया देवमनुजाः
महाकालीं वन्दे करुणजलधिं मातरमहम्।।१।।

– समस्त विधान का सम्पादक काल जिसके वशीभूत है, जो देवताओं और भक्तों की विपदाओं का निवारण करती हैं, जिनके कारण प्रणत हृदयवाले देवता और मनुष्य तीनों लोकों में निश्चिन्त रहते हैं, उस करुण-सागर माता महाकाली की मैं वन्दना करता हूँ।

करे खड्गं तीक्ष्णं रिपुदलनरक्तार्द्रभयदं
शिरोमाल्यं कण्ठे निहतदनुजानां विरचितम्।
महादेवस्योरःस्थलसरसिजारूढचरणा
बहिर्जिह्वाग्रां तां सुतशरणदात्रीमनुभजे।।

– जिसके हाथ में शत्रु-दलन करने से रक्त से भींगा भयकारी धारदार खड्ग है, गले में मारे गये दैत्यों से निर्मित मुण्डों की माला है, महादेव शिव के वक्षस्थल रूपी कमल पर जिनके चरण आरूढ़ हैं और जिह्वाग्र बाहर निकली हुई है, उन पुत्रों की शरणदायिनी की मैं अर्चना करता हूँ।

इमौ चण्डो मुण्डः तुमुलसमरे दैत्यबलिनौ
हतौ चामुण्डा त्वं भुवन विदिता विश्वजननी।
तव क्रोधात् भीतो भवति सहसा पञ्चवदनः
शिवो लोकाधीशः कृपणमनसां कुत्र गणना।।३।।

– भयानक युद्ध में इन दोनों चण्ड और मुण्ड नामक बलवान दैत्यों को जो मारा डाला, तभी से विश्वजननी तुम चामुण्डा नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई। तुम्हारे क्रोध से तो पंचमुख वाले महादेव भी सहसा घबरा उठते हैं, फिर तुच्छ हृदयवालों की क्या बात !

कलौ काली कृष्णा विभवपदमूला सितलता
सुखानां भक्तेभ्यः सृजति बहुलां रक्तकुसुमाम्।
भयं दुर्वृत्तानां सृजति विविधं निर्दयतया
सदार्तव्यग्राणामवननियमा पातु जननी।।४।।

– कलियुग में वैभव-स्थल की जड़, कृष्णवर्णा काली रूपी धवल लता भक्तजनों के सुख के लिए बहुतायत रक्त पुष्पों को उत्पन्न करती रहती हैं। जो दुर्जनों के लिए निर्दयता से नाना प्रकार के भय उत्पन्न करती हैं, वे सदा पीड़ितों और व्यग्र जनों की रक्षा का नियम निभानेवाली माँ हमारी रक्षा करें।

इयं माता काली हि मयि मुदिता हृष्यति अहो
तदा का चिन्ता मे भवजलधिपारस्तु गमने।
मलं मोहं प्रक्षाल्य शुभमतिमन्तं नयति मां
निजे दैवीलोके परमरमणीये रसमये।।५।।

– अहा, यदि यह माँ काली ही मुझ पर प्रसन्न हों, तो भव-सागर पार करने में मुझे भला क्या चिन्ता होगी! सारी गन्दगी और मोह को हटाकर शुभ मतिमान् बनाकर माँ मुझे अपने परम रमणीय रसमय दैवीलोक में ले जायेंगी।

कविता

जयतु जयतु जय दुर्गे माता

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

जयतु जयतु जय दुर्गे माता, तुम ही सच्चित-सुख-आधार।
परम ब्रह्म की आदिशक्ति हो, तुम ही सकल ज्ञान-आगार।।
ज्योतिस्वरूपा तुम माँ भगवति, करती हो भवभय से पार।
जरा-मरण से सदा रहित हो, दुष्टों का करती संहार।।
तुम ही हो माँ निर्गुणरूपिणि, सर्वव्याप्त तुम इस संसार।
सगुणस्वरूपा हो माँ तुम ही, भक्तहृदय में तुम साकार।।
तुम ही सर्वभूतकारण हो, तुम ही हरती विषय-विकार।
त्रिगुणधारिणी कालरात्रि तुम, गदाधारिणी तेज अपार।।
शंखधारिणी चक्रधारिणी, असद्वृत्ति करती प्रतिकार।
सिंहवाहिनी धनुर्धारिणी, तुम ही महाशक्ति-भंडार।।
तुम्हीं त्रिशूलधारिणी देवी, तुम ही करती जय-विस्तार।
सर्वमंगला नित्यगुणमयी, दो मुझको माँ स्नेहाधार।।

आध्यात्मिक जिज्ञासा (८१)

स्वामी भूतेशानन्द

(५२)

प्रश्न – उद्‌बोधन में आपका लेख प्रकाशित हुआ है। श्रीमाँ का शरीर जब बेलूड़ मठ में आया, तब राजा महाराज के द्वारा लगाये गये नागलिंगम् के वृक्ष के नीचे उन्हें रखा गया था। वह किस स्थान पर महाराज?

महाराज – वहीं तो, नागलिंगम् का पेड़ अभी भी है तो।

– पुराना नागलिंगम् का पेड़ सूख गया, महाराज। उसी स्थान पर एक दूसरा पेड़ लगाया गया है। क्या वहीं घाट था?

महाराज – उस समय घाट था नहीं। एक बँधा हुआ टाल था। नाव वहाँ आकर लगी। वहाँ से उठाकर श्रीमाँ का शरीर लाया गया।

– महाराज, यहाँ कुछ जो पेड़ हैं, उनमें से राजा महाराज के द्वारा लगाया हुआ कौन-सा है?

महाराज – अरे ! क्या राजा महाराज को दूसरा कोई काम नहीं था कि अपने ही हाथ से लगायेंगे? उनके आग्रह पर लगाया गया था। राजा महाराज ने स्वयं लगाया है क्या?

– नागलिंगम्, पूर्णा, ठोडा वट, एक के बाद एक कई पेड़ हैं।

महाराज – ठोडा वट का अच्छा नाम जानते हो क्या है? गोकर्ण वट। पशु के कान के समान। पशु का कान तो और लम्बा होता था। कलियुग में छोटा हो गया है। उठ रहे हो, जा रहे हो ! यही अच्छी बात हो गयी !

– आज अब अधिक बात नहीं होगी महाराज। समय हो गया है।

महाराज – कब होता है ! मैं तो नहीं जानता।

– महाराज ! आप जो कहते हैं, वही अच्छी बात है।

महाराज – ओ बाबा ! फिर से प्रशंसा...

– ऐसा है महाराज, यहाँ थोड़ा आना होता है। आप बातचीत करते हैं, हम लोग सुनते हैं, थोड़ा हँसते हैं। यही तो और क्या !

महाराज – एक काम करो। साथ में एक कैमरा लेते आओ। जब तुम लोग हँसना, कमरे में खींच कर सुरक्षित रख लेना। वह रहेगा।

– आपकी हँसी को हमलोगों ने स्मृति के रूप में संरक्षित कर लिया है।

महाराज – पकड़कर रख लिये हो? देखो, भाग न जाये। क्योंकि जो हँस रहा है, वह भाग जायेगा।

– उसे भागते अभी देर है।

महाराज – भागते देर है कि नहीं, उसे कोई नहीं जानता। एक कोई गीत है – 'कोई जानता नहीं। माँ तुम कौन हो, कोई जानता नहीं। ...'

– उसे तो जानता हूँ। एक आधुनिक गीत है।

महाराज – आधुनिक और प्राचीन, ये सब तो सापेक्ष शब्द है। अभी हमलोग प्राचीन कह रहे हैं। इसके बाद तुमलोग इसी समय को प्राचीन कहोगे।

– अभी जो आधुनिक है, ५० वर्ष बाद वही प्राचीन हो जायेगा। महाराज, रवीन्द्रनाथ का एक गीत है – 'तुमि डाक दियेछो कोन् सकाले केउ ता जाने ना' – तुमने कब, किस सबेरे पुकारा है, कोई जानता नहीं है।

महाराज – वही..ई...। हमारा आजकल क्या हो रहा है, किसी का नाम बोलने से पुरानी सभी बातें याद आ जा रही हैं। मुझे तो संशय होता है, के रे बाबा ! स्वामी गम्भीरानन्द जी के सचिव राधाकृष्ण का नाम आत्मारामानन्द है। हमारे एक मित्र थे आत्मारामानन्द। उनको काशी-प्राप्ति हो गयी है।

– आता हूँ महाराज !

महाराज – आओ और क्या करोगे?

(५३)

प्रश्न – रामकृष्ण मिशन की एक शताब्दी बीत गयी।

महाराज – एक शताब्दी बीत गयी और कुछ भी नहीं।

– बीत गयी। हम लोग नहीं बीते।

महाराज – बाबा ! बीता दिया ! जानते हो, मैंने स्वप्न देखा सामने के दरवाजे से एक ब्रह्मचारी लड्डू गोपाल के सामान हाथ फैलाये हुए है और लोग पच्चास पैसा, रुपया जो कुछ है, उसे दे रहे हैं। ब्रह्मचारी को स्पष्ट देख रहा हूँ। घूटने के बल बैठा लड्डू गोपाल के समान हाथ ऐसा फैलाये हुए है। (महाराज ने हाथ फैलाकर दिखाया)

– ब्रह्मचारी को आप जानते हैं क्या?

महाराज – नहीं, पहचान नहीं सका। (सहज हँसी से महाराज का मुखमण्डल चमक उठा)

– (अपने को दिखाकर) इसमें है क्या महाराज? लोग लड्डू-वडडू दे रहे हैं?

महाराज – लड्डू नहीं दे रहे हैं, पैसा दे रहे हैं। पैसा माने रुपया, पच्चास पैसा यही सब।

– इसका अर्थ है, लगता है कि इस शतवार्षिकी में प्राप्तियोग अच्छा ही है, महाराज।

महाराज – (मुख पर कृत्रिम गम्भीरता लिए) होने से और क्या होगा। सब तो ब्रह्मचारियों के पेट में जायेगा। आज तो उत्सव है। (सार्वजनिक उत्सव के दिन ब्रह्मचारी लोग मेला देखने के लिये पूजनीय महाराज से कुछ रुपया-पैसा पाते हैं। प्रत्येक बार कुछ-कुछ व्यवस्था रहती है। उस सम्बन्ध में ब्रह्मचारीवृन्द अकेले एक साधु से परामर्श कर रहे हैं, देखकर महाराज ने कहा) ये सब क्या गोपनीय ढंग से ठीक कर लेते हैं, मैं जान ही नहीं पाता हूँ। समझ गया, मेरे सामने ही षड्यन्त्र हो रहा है (सभी हँसते हैं)

– स्वर्ण जयन्ती में (५० वर्ष में) कुछ हुआ था क्या?

महाराज – नहीं, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ।

– महाराज ! पहले तो सारदानन्दजी उद्‌बोधन में रहते थे। मिशन के नाम से अलग कार्यालय कब से बना है?

महाराज – अरे ! कार्यालय नाम से क्या था? उस समय एक पुस्तकालय था। उसमें कुर्सी-उर्सी कुछ नहीं थी। चटाई बिछाकर सभी लोग बैठते थे। चटाई पर बैठकर कोई एक खाता-बही लिखता था। कार्यालय के काम के कुछ पत्र थे। कार्यालय माने यही। परेश महाराज वकील के पास आते-जाते थे। खाता-बही देखते थे। परेश महाराज सेमी महन्त थे, deputy नहीं semi थे.

– महाराज ! 'मिशन ऑफिस' नाम से ऑफिस किसके समय से हुआ है?

महाराज – ये हमलोगों के पहले से है। किन्तु ऑफिस नाम से तो कुछ नहीं था। अभी तो बताया, वहाँ बैठकर मुरमुरा भी खाते थे और खाता-बही भी लिखते थे।

– आपने बताया था कि वह भवन साधु निवास था।

महाराज – उस भवन की बात मैं नहीं कर रहा हूँ। स्वामीजी के पास का कमरा।

– सूर्य महाराज जहाँ रहते थे?

महाराज – हाँ। उस समय सूर्य महाराज ऐसे नहीं थे। तब सूर्य महाराज कहाँ रहते थे, पता नहीं।

– लेगेट हाउस में भी कार्यालय हुआ है क्या?

महाराज – वह बाद में हुआ है।

– मिशन का काम-धाम तो उद्‌बोधन में ही होता था, जितने दिन शरत महाराज वहाँ थे।

महाराज – काम-धाम करना माने वहाँ से चिट्ठी-पत्री लिखते थे। किन्तु सभा यहीं होती थी। सभा भी हमेशा होती थी, ऐसा नहीं था।

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने एक बार हरमोहन को ठाकुर की 'हाथी-नारायण, महावत-नारायण' की कहानी सात दिन तक समझाया था। उनका क्या विचार था?

महाराज – स्वामीजी ने कहा है, सात दिन तक कहानी का तात्पर्य उन्हें समझाया है। मेरी क्या सामर्थ्य है?

– सात दिन नहीं होने पर भी एक दिन तो हो सकता है।

महाराज – एक व्यक्ति को महावत-नारायण ने कह रहा था – हट जाओ, हट जाओ। वह नहीं हटा। उसको लगा कि हाथी नारायण है। गुरुजी ने कहा था – हाथी नारायण हो सकता है। महावत भी नारायण है, उनकी यह बात वह नहीं सुनेगा क्यों? अर्थात् सर्वत्र नारायण-दर्शन करने पर भी सबके साथ एक समान व्यवहार होगा, ऐसी बात नहीं है। ठाकुर ने एक दूसरी उपमा दी है। किसी पानी से हाथ-पैर धोया जाता है, किसी पानी से स्नान किया जाता है और किसी पानी को पीया जाता है। ठीक ऐसे ही इतने प्रकार के नारायण-भेद भी है।

– अर्थात् एक-एक नारायण के साथ एक-एक प्रकार का व्यवहार करना होगा।

शेष भाग पृष्ठ ४५५ पर

दुर्गापूजा विशेष

या देवि सर्वभूतेषु ...

स्वामी अलोकानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – रीता घोष, बैंगलुरू

मार्कण्डेय पुराण के ८१ से ९३ इन तेरह अध्यायों को 'श्रीश्रीचण्डी' या 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से सभी लोग जानते हैं। मार्कण्डेय पुराण में यह 'देवी-माहात्म्य' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ तीन चरित्रों में विभक्त हैं। तीनों चरित्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ क्रमश: इस प्रकार हैं – महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती। प्रथम चरित्र में मधुकैटभ वध, मध्यम चरित्र में महिषासुर वध एवं उत्तर चरित्र में शुम्भ-निशुम्भ वध का आख्यान वर्णित है। समग्र ग्रंथ में चार स्तुतियाँ प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण हैं। देवी की माहात्म्यबोधक ये चारों स्तुतियाँ इस प्रकार हैं – प्रथम अध्याय में ब्रह्माकृत 'त्वं स्वाहा' इत्यादि, मध्यम चरित्र के चतुर्थ अध्याय में शक्रादिकृत देवी स्तुति, उत्तर चरित्र के पंचम अध्याय में देवताओं के द्वारा किया हुआ 'नमो देव्यै' इत्यादि एवं एकादश अध्याय में 'देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद' इत्यादि नारायणी स्तुति। इन सभी स्तवों में 'नमो देव्यै' स्तोत्र पौराणिक या तांत्रिक देवीसूक्त नाम से भी प्रसिद्ध है, 'अपराजितास्तव' नाम से भी यह परिचित है। इस स्तोत्र के माहात्म्य के सम्बन्ध में लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है –

नमो देव्यादिकं देवीसूक्तं सर्वफलप्रदम्।
इमां देवीं स्तवन्नित्यं स्तोत्रेणानेन मामिह।।
क्लेशानतीत्य सकलानैश्वर्यं महदश्नुते।।[१]

प्राधानिक रहस्य की गुप्तवती टीका में कहा गया है, इन चारों स्तोत्रों में पंचम अध्यायोक्त यह स्तुति श्रीश्रीचण्डी के तुरीयस्वरूप का स्तव है, अन्य तीनों – महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती, ये व्यष्टि चरित्रत्रय के स्तव हैं – **तस्याश्च व्यष्टिरूपाणि त्रीणि महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती। तेन समष्टिरूपैव चण्डिका तुरीया धर्मीरूपा निर्गुणा किन्तु पंचमीति स्थितिः।**[२]

इस स्तव में देवताओं ने पृथक्-पृथक् वस्तु में निहित शक्तिरूप में अवस्थित एक अद्वितीय सत्ता के रूप में देवी का दर्शन किया है। सृष्टि की सभी वस्तुओं में एक ही चैतन्य सत्ता विद्यमान है, सर्ववस्तुओं में अन्तर्निहित इसी चैतन्य शक्ति के बोध से ही सभी साधनाओं की सार्थकता है। वेद में भी कहा गया है – **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।**[३] यह ब्रह्म ही देवी, शक्तिरूपिणी है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''जिन्हें तुम ब्रह्म कहते हो, उन्हें ही मैं काली कहता हूँ।''[४] रामप्रसाद ने भी गाया है – **काली ब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि** – काली के मर्म को समझकर मैंने धर्म-अधर्म सबको छोड़ दिया है। अर्थात् तुरीय अवस्था में ब्रह्म एवं काली वस्तुत: एक ही है, जैसेकि अग्नि एवं उसकी दाहिका शक्ति।

प्राचीन काल में शुम्भ एवं निशुम्भ नामक असुरों ने अपने शक्ति के प्रभाव से स्वर्ग-राज्य पर अधिकार कर देवताओं को हटा दिया था। राज्यच्युत, अपमानित देवताओं ने उसी अपराजिता देवी को सम्यक् रूप से स्मरण किया – **तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्।**[५] उनलोगों ने देवी का **पूर्वप्रतिश्रुत** 'आपात् काल में स्मरण करने पर मैं तुमलोगों के समस्त बड़ी विपत्तियों का तत्क्षण नाश करूँगी' इस वाक्य का स्मरण कर उनके लिये जो वन्दना की थी, उसमें से १४ से लेकर ८० मंत्रों तक देवी के विष्णुमाया इत्यादि २३ रूपों

का वर्णन है। किसी-किसी के मतानुसार धृति एवं पुष्टि नाम से अधिक रूपद्वय गृहीत होने पर भी कात्यायनीतन्त्र मत में उसे अनार्ष कहा गया है –

विष्णुमाया चेतना च बुद्धि-निद्रे क्षुधा तथा।
छाया शक्तिश्च तृष्णा च क्षान्तिर्जातिस्ततः परम्।।
लज्जा शान्तिस्ततः श्रद्धा कान्तिर्लक्ष्मीस्ततः परम्।
वृत्तिः स्मृतिर्दया चैव तुष्टिर्माता ततः परम्।।
भ्रान्तिर्व्याप्तिश्चितिश्चैव त्रयोविंशति संख्यकाः
इतोऽधिकमनार्ष स्यात्तन्त्रे कात्यायने स्फुटम्।।[६]

कात्यायनी तन्त्र के मतानुसार गृहीत इन तेईस रूपों के आध्यात्मिक तत्त्व की संक्षेप में चर्चा करता हूँ।

वेदान्त दर्शन में ब्रह्मस्वरूप को '**जन्माद्यस्य यतः**'[७] कहा गया है, जन्म-स्थिति-संहार जिनसे होता है, वही ब्रह्म है। शंका होती है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म किस प्रकार ये सभी कार्य करते हैं? श्रुति कहती है – **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय इति।**[८] – उन्होंने इच्छा की कि एक मैं बहु – अनेक बनूँगा एवं वे सृजन करते हैं। यहाँ 'ईक्षण' शब्द लक्षणीय है। अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय सत्ता जब 'ईक्षण' करते हैं, तब उनके कार्य में जो शक्ति सहायक होती है, उन्हें ही

यहाँ 'विष्णुमाया' कहा गया है। विष्णुमाया मूला अविद्या है। जो अव्यक्त को सत्त्व, रज, तम गुणों के द्वारा विभक्त कर व्यक्त रूप से प्रकाशित होती है, वही विष्णुमाया है। भास्कराचार्य अपनी गुप्तवती टीका में कालिकापुराण से वचन उद्धृत करते हुए कहते हैं –

'अव्यक्तं व्यक्तरूपेण रजः सत्त्वतमोगुणैः।
विभज्य यार्थं कुरूते विष्णुमायेति सोच्यते।।[९]

ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है –

सृष्टि माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना।
मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्तिता।।

श्रीभगवान ने गीता में कहा है – **'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।**[११] यही आत्ममायया ही विष्णुमाया है, परमात्मा की इसी शक्ति ने जगत् का सृजन कर उसी में सबको मोहित करके रखा है। अज्ञानाच्छन्न जीव इसीलिए अनात्मा में आत्मबुद्धि आरोप कर जन्म-जन्मान्तर परिभ्रमण करता रहता है। मुमुक्षु इसी माया का अतिक्रमण करने के लिए उनके शरणागत होकर कहते हैं –

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।[१२]

जो देवी सभी प्राणियों में विष्णु माया नाम से अभिहित हैं, उन देवी को प्रणाम, उनको प्रणाम, उनको प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम ! प्रत्येक श्लोक में इस प्रणामबाहुल्य का तात्पर्य समझना आवश्यक है। तीन बार 'नमस्तस्यै' एवं एक बार 'नमो नमः' कहा गया है।

१. विष्णुमाया – सात्त्विकी राजसी एवं तामसी भेद से त्रिरूपा हैं। सृष्टि-कार्य में वह राजसी, स्थिति या पालन में सात्त्विकी एवं संहार में तामसी हैं। दूसरी ओर देवी आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक स्वरूप में भी त्रिरूपा हैं। स्थूल सर्वभूत में उनका आधिभौतिक प्रकाश (व्यक्त) है, सूक्ष्म महती शक्तिरूप में उनका आधिदैविक रूप एवं स्थूल-सूक्ष्म के अतीत कारणरूपिणी विष्णुमाया देवी का आध्यात्मिक रूप है। इन्हीं तीनों रूपों को तीन बार 'नमस्तस्यै' मंत्र द्वारा प्रणाम अर्पण किया जाता है। स्थूल रूप में आधिभौतिक सत्ता को कायिक प्रणाम अर्पण किया जाता है, सूक्ष्म रूप में आधिदैविक सत्ता को वाचिक एवं कारण रूप में आध्यात्मिक सत्ता को मानसिक प्रणाम से सूचित किया गया है। अन्त में तुरीय एवं तुरीयातीत अवस्थाद्वय को ध्यान में रखकर 'नमो नमः' कहा गया है। श्रीश्रीचण्डी का दंशोद्धार टीकाकार कहते हैं, **''त्रिरुक्तिस्तत्तु प्रसादने। उक्तं च 'विशदे विस्मये हर्षे खेदे दैन्याऽवधारणे। प्रसादने सम्भ्रमे च द्विस्त्रिरुक्तं न दुष्यति।। यद्वा कायिक वाचिक मानसिक नमस्कार सूचनाय त्रिरुक्तिः तस्यै पदस्यापि विष्णुमायादीनां सात्त्विकादिभेदेन त्रिविधत्वात्।**[१३]

२. चेतना – तत्पश्चात् चेतनारूपिणी के प्रति प्रणाम अपर्ण किया गया है। 'चेतना' शब्द के अर्थ को लेकर टीकाकारों में मतभेद है। गुप्तवती टीकाकार जीव-नाड़ी को चेतना कहते हैं। नागोजी भट्ट कहते हैं – **चेतना निर्विकल्पा या चिच्छक्तिरित्युच्यते।**[१४] चतुर्धरी टीकाकार ने अन्त:करणवृत्ति को ही चेतना कहा है। तत्त्वप्रकाशिका टीका में सर्वेन्द्रिय प्रवृत्ति के हेतुस्वरूप अन्त:करण की शक्तिविशेष को चेतना कहा गया है। किसी-किसी मतानुसार सुख-दुखानुसन्धान-शक्ति ही चेतना है। सभी मतों की सामंजस्य की दृष्टि से सभी इन्द्रियों की प्रवृत्ति हेतुस्वरूप अन्त:करण वृत्तिविशेष को ही चेतना कहने से अत्युक्ति नहीं होगी। स्थूल में यह चेतना नाम-रूपाकार में अभिव्यक्त विश्व, सूक्ष्म में प्राणशक्ति रूप में तेजस एवं कारण में अव्यक्त रूप में प्राज्ञ है। इन तीनों के अतीत निर्विशेष तुरीय ब्रह्म चैतन्य है। यही चेतना जीव में अन्तर्निहित है, परन्तु उसके बोधन, जागरण की आवश्यकता है। इसलिए साधक गाते हुए कहते हैं – **आमार चेतना चैतन्य करे दे माँ चैतन्यमयी।** सर्वभूतों में विद्यमान चेतनारूपिणी माँ को साधक-प्रणति निवेदन किया है।

३. बुद्धि – अन्त:करण की निश्चयात्मिका वृत्ति ही बुद्धि है। गीता में भगवान ने कहा है – बुद्धि सात्त्विकादि भेद से त्रिविध होती है। देवि वही बुद्धिरूपिणि हैं। व्यष्टि रूप में वह सभी जीवो में हैं, समष्टि-बुद्धि के रूप में वे महत्तत्त्व में तथा व्यष्टि एवं समष्टि के कारण रूप में वे अव्यक्त रूप से विराजित हैं। बुद्धि की शुद्धि के लिए गायत्री मंत्र में कहा गया है – **धियो यो नः प्रचोदयात्** – हमारी बुद्धि को प्रेरित करें। इसी महती बुद्धिरूपिणि देवी से साधक की व्याकुल प्रार्थना है। वे हमारी बुद्धि को आत्माभिमुखी करें।

४. निद्रा – महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है – '**अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।**''[१५] – जो वृत्ति शून्य भाव का अवलम्बन करके रहती है, वही वृत्ति निद्रा है। वहाँ इन्द्रियों की सभी क्रियाएँ निरुद्ध हो जाती हैं। इस अवस्था में जीव का **'न किञ्चिदवेदिषम्'** – मैं कुछ नहीं जानता, ऐसा अनुभव जिस सत्ता में होता है, वह देवी का निद्रा रूप है। वास्तव में जब तुम अभावप्रत्ययरूपिणी होकर आत्म-प्रकाश करती हो, उस समय तुम्हारा वह परमप्रेममयी सुषुप्ति-मूर्ति की गहराई में इन्द्रियव्यापारजनित कर्म से क्लान्त होकर हमलोग परम सुख की प्राप्ति करते हैं। साधक उस परम शान्ति निद्रारूपिणी की प्रसन्नता के लिये प्रणाम करते हुये कह रहे हैं 'नमस्तस्यै' इत्यादि।

५. क्षुधा – अर्थात् भोजन करने की इच्छा। जन्म से ही जीवों में भोजनेच्छा जाग्रत रहती है। अन्नमय कोष द्वारा रचित स्थूल शरीर में स्वस्थ-अवस्था में स्थूल आहार के लिए भोजनेच्छा रहती है। अन्य चारों कोषों में भी उसी प्रकार से उन्हीं-उन्हीं अवस्थानुसार क्षुधा की अभिव्यक्ति देखी जाती है। प्राणमय कोष का आहार जीवनीशक्ति है, मनोमय कोष का चिन्तन-विचार, विज्ञानमय कोष का ज्ञान एवं आनन्दमय कोष का प्रीति-हर्ष इत्यादि आहार हुआ करता है। इस प्रकार पंचकोषों के द्वारा विभिन्न प्रकार का आहार ग्रहण करते हुए जीव उस परम सत्ता की ओर अग्रसर होता है। वस्तुत: वह परमा शक्ति क्षुधा रूप में जीवों को उर्ध्वगति विधान करती है। साधक इस क्षुधारूपिणी देवी को प्रणाम करते हुए संसार-क्षुधा की आत्यान्तिक निवृत्ति हेतु प्रार्थना कर रहे हैं।

६. छाया – कठोपनिषद में कहा गया है – ''**छायातपो ब्रह्मविदो वदन्ति।**''[१६] छाया अर्थात् जीवात्मा। छाया शब्द का अर्थ है प्रतिबिम्ब। चित् प्रतिबिम्ब ही जीव है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों में यह छाया या चित् प्रतिबिम्ब है। परमात्मा का आच्छादक यही जीवच्छाया है। सब कुछ अव्यक्त ब्रह्म है, किन्तु जीव-बोध ही ब्रह्म-बोध का आच्छादक बना हुआ है। प्रत्येक जीव के इस आवरण को दूर करने हेतु साधक इस छायारूपिणी देवी से निरन्तर प्रार्थना करता है। महामाया के द्वारा द्वार खोलने से ही यह आवरण दूर होगा। अत: परमात्मा के संग ऐक्य-बोध में ही जीवन की सार्थकता है।

७. शक्ति – प्रत्येक जीव में दृक्शक्ति, श्रवणशक्ति, वाक्शक्ति इत्यादि कई प्रकार की शक्तियाँ देखने को मिलती हैं। अज्ञानता के कारण जीव सोचता है – 'ये सभी हमारी शक्तियाँ हैं'। वस्तुत: जीव की कोई शक्ति नहीं होती, वह शक्ति से संयुक्त होकर शक्तिमान होता है। अत: शक्ति एक पृथक् सत्ता है। जगद्व्यापी इसी एक शक्ति की ही क्रीड़ा है, वैचित्र्य है। वह शक्ति है परमा शक्तिरूपिणी देवी। यही शक्ति जब शव के साथ युक्त होती है, तो 'शिव' हो जाता है – **शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तिः प्रभवितुम्।**[१७] श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''छोटे बच्चे सोचते हैं कि आलू, परवल, बैगन सभी जीवन्त हैं, इसलिए उछल रहे हैं। किन्तु जिनको ज्ञान है, वे समझा देते हैं, ये सब्जियाँ अपने आप

नहीं कूद रही हैं। पतीले के नीचे आग जल रही है, इसलिए ये उछल रहे हैं। यदि लकड़ी हटा ली जाए, तब वे नहीं उछलेंगे।'' जीव का 'मैं कर्त्ता हूँ' यह अभिमान अज्ञान से होता है। ईश्वर की शक्ति से सब कुछ शक्तिमान है।''[१८] एक ही शक्ति है, क्रिया के अनुसार उसके विविध नाम हैं। श्रुति उस शक्ति को कहती है – '**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः यत्**' इत्यादि। इसी शक्ति से शक्तिमान होकर अल्पज्ञ जीव 'सर्वज्ञ सर्ववित्' होता है। इसलिए इस शक्तिस्वरूपिणी देवी को प्रणाम करते हुए साधक ने 'नमस्तस्यै' इत्यादि कहा है।

८. तृष्णा – इस शब्द का अर्थ है प्यास, वासना, आकांक्षा इत्यादि। सांसारिक भोग्य विषयों की तृष्णा से जीव व्यग्र हो जाता है, अवसादग्रस्त हो जाता है। किन्तु 'ईश्वर कामना' कामना नहीं होती। आत्मस्वरूप को जानने की आकांक्षा में कोई हानि नहीं है। यहाँ पर परम शान्तिप्राप्ति के लिए जीव की जो आकांक्षा, तृष्णा है, वह तो तुम्हीं हो। हे तृष्णारूपिणी माँ ! तुमने जीव को जिस प्रकार भोगवासना दी है, वैसे ही वैराग्य युक्त साधक के मन में ईश्वरलाभ की आकांक्षा भी जाग्रत कर दो। अज्ञानी जीव अज्ञानतावश विषय-वासना की कामना करता है। परन्तु वही जीव जब ईश्वर की कामना करता है, तब उसकी विषय-वासना का नाश हो जाता है। इसलिए तृष्णारूपिणी तुम्हारा आश्रय लेकर क्षुद्र विषय-तृष्णा के पार जाने के लिए ही जीव की यह व्याकुलता है।

९. क्षान्ति – इस शब्द का अर्थ है क्षमा। प्रत्येक जीव में थोड़ी-बहुत क्षमा-भावना रहती ही है। किन्तु वह क्षमा सर्वदा स्वार्थयुक्त रहती है। संसारासक्त जीव से सर्वदा जीवन-पथ पर चलते हुए भूल हो ही जाती हैं। किन्तु आत्मस्वरूप के सम्बन्ध में अज्ञानता ही जीव की सबसे बड़ी भूल है। संसारासक्त जीव की सभी त्रुटियाँ तुम क्षमा करती हो, इसलिए तुम क्षमारूपिणी हो। तुम्हारी यह क्षमा जीव की उर्ध्वगति में सहायक होती है। इसलिये हे क्षमारूपिणी, तुम्हें अज्ञानी साधक प्रणाम करता है।

१०. जाति – जो नित्य होकर भी अनेक पदार्थों में संयुक्त है, उसे जाति कहते हैं। जैसे मनुष्य में मनुष्यत्व, ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व, क्षत्रिय में क्षत्रियत्व इत्यादि। इस प्रकार व्यष्टिजाति-समूह वास्तव में एक अद्वितीय जाति की तरंगमात्र है। जाति शब्द का अर्थ उत्पत्ति माना जाय, तो कहा जा सकता है कि वे सभी व्यष्टि-जाति एक ही माँ की संतान हैं। प्रलय काल में जब व्यष्टि का विलय होता है, तो एक जातिरूपिणी देवी ही विद्यमान रहती हैं। सर्वभूतों में जाति रूप में अवस्थित देवी को साधक नमस्कार करते हैं।

११. लज्जा – कर्तव्य-कर्म के प्रति निष्क्रियता और कुकर्म के आचरण से दूसरे के निकट अथवा स्वयं अपने में जो संकोचभाव उत्पन्न होता है, वही लज्जा है। देवी की लज्जामूर्ति जीव को उच्छृंखलता से संयत करती है। इसलिए अपनी संयम शक्ति के उन्मेष के लिए सर्वप्राणियों की लज्जारूपिणी देवी को साधक नमस्कार कर रहे हैं।

१२. शान्ति – 'शम्' धातु से शान्ति शब्द निष्पन्न होता है। 'शम्' धातु का अर्थ उपशम, उपरति है। विषय से इन्द्रिय-संयम, विषय से उपरति ही शान्ति है। शान्ति प्राप्ति की सबकी कामना रहती है। विषयभोग से आत्यन्तिक शान्तिप्राप्ति नहीं होती है, बल्कि अतृप्ति, अशान्ति की वृद्धि होती है। ययाति बहुविध भोगों के पश्चात् अतृप्त हो विचार करते हुए कहते हैं –

न जातु कामः कामानामूपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयः एवाभिवर्धते।।[१९]

विषय से उपरति ही परम शान्ति प्राप्त करने का उपाय है। विषयविहीन सत्ता तुम्हारा परम प्रशान्ति रूप है। उस रूप के दर्शन से, सान्निध्य से जीव की सकल तृष्णा दूर हो जाती है, परम प्रशान्ति का उदय होता है। सर्वप्राणियों में शान्तिरूप में विराजित देवी को प्रणाम निवेदन करते हैं।

१३. श्रद्धा – गुरु एवं शास्त्रवाक्य में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है। आचार्य शंकर कहते हैं –

गुरुवेदान्तवाक्येषु बुद्धिर्या निश्चयात्मिका।
सत्यमित्येव सा श्रद्धा निदानं मुक्तिसिद्धये।।[२०]

– गुरु के वचन और वेदान्त के वाक्य अटल सत्य है ऐसा जो निश्चित रूप से हो वह ही श्रद्धा है, ऐसी श्रद्धा ही मोक्षसिद्धि का मूल कारण है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान भी कहते हैं – '**श्रद्धावान् लभते ज्ञानं**'[२१] – श्रद्धावान ज्ञान प्राप्त करता है।संशय रहने से जीव का निश्चय ज्ञान नहीं होता है, श्रद्धा भी जाग्रत नहीं होती। श्रद्धा एवं निश्चयज्ञान एक-दूसरे के परिपूरक हैं। जीव में जिस प्रकार व्यष्टिरूप में श्रद्धा जाग्रत होती है, उसी प्रकार समष्टि रूप में एक महती श्रद्धा के रूप में देवी विराजित हैं। सर्वप्राणियों में विद्यमान श्रद्धारूपिणी देवी ही साधक की प्रणम्य हैं।

१४. कान्ति – इस शब्द का अर्थ है शोभा, सौन्दर्य। किसी-किसी टीकाकार ने इसका अर्थ इस प्रकार से किया है – **कान्तिर्लावण्यमिहा वा**[२२] – कान्ति लावण्य या इच्छा। शोभा या कमनीयता ही इसका प्रसिद्ध अर्थ है। लौकिक जगत के व्यक्ति या वस्तुओं में लावण्य, शोभा, सौन्दर्य देखकर हम सभी आकर्षित होते हैं, उसे प्रिय बोधकर ग्रहण करते हैं। वस्तुत: समस्त सौन्दर्य का 'आकर', उस प्रेमस्वरूप के सौन्दर्य का कण मात्र ग्रहण करके अन्य सभी वस्तुएँ प्रिय हो जाती हैं।। ये सभी सौन्दर्य अज्ञान द्वारा सीमित हैं। अज्ञानता की सीमा का अतिक्रमण करके समष्टि रूप में हम सर्वभूतमहेश्वरी की महती कान्ति को देखते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं – **आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**[२३] साधक ने यहाँ पर 'सीमा के बीच असीम' उसी परम सौन्दर्यरूपिणी देवी को ही प्रणाम निवेदन किया है।

१५. लक्ष्मी – अर्थात् धन-आदि सम्पत्ति। लक्ष्मी के अधिष्ठित होने से सौन्दर्य की वृद्धि होती है। इसलिए उनका एक दूसरा नाम है 'श्री'। सर्वोत्तम धन है ज्ञान, विद्या और तपस्या। 'लक्ष्मी' शब्द का अर्थ प्राण भी है। जीव के शरीर में जब तक प्राण है, तब तक उसका सौन्दर्य, श्री भी रहती है। सभी वस्तुओं के सौन्दर्य का आधार, आकर प्राण ही लक्ष्मी है। वह लक्ष्मीरूपिणी देवी ही यहाँ साधक के लिये प्रणम्य हैं।

१६. वृत्ति – वर्तते अनया वृत्ति: – जिसके द्वारा जीवन धारण किया जाता है, वह कृषि-वाणिज्यादि जीविका वृति है। एक दूसरे अर्थ में चित्तवृत्ति अर्थात् चित्त की अवस्थिति। विषय में स्थित चित्त जीव को विभ्रान्त करता है। जन्म-मरण चक्र में जीव घूमता रहता है। जीव को जीवन-धारण के लिए जीविका का प्रयोजन होता है, परन्तु जन्म-मरण चक्र से निवृत्त होने के लिए चित्त को मोक्षपद पर स्थित रहना आवश्यक है। इसलिए मोक्षपदाभिलाषी साधक वृत्तिरूपिणी देवी से विनम्र प्रार्थना करता है।

१७. स्मृति – संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृति:।[२४] महर्षि पतंजलि कहते हैं – **अनुभूतविषयासम्प्रमोष: स्मृति:**[२५] – अनुभूत विषय हमारे मन में संस्कार रूप में रहते हैं और जब बाद में वे पुन: चित्त में उद्भूत होते हैं, तो उसे स्मृति कहते हैं। **छान्दोग्योपनिषद में (७/२६/२)** कहा गया है – **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि: सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति:।** आहार अर्थात् जो कुछ भी इन्द्रिय द्वारा आहरण किया जाता है, उसकी शुद्धता होने से बुद्धि शुद्ध होती है, बुद्धि शुद्ध होने से आत्मविषयक अविच्छिन्न स्मृति जाग्रत होती है। वह स्मृति जीव के जीवन में सार्थकता प्रदान करती है। जीव कृतकृत्य होता है। इसलिए देवी से निरन्तर प्रार्थना है कि वे आत्मविषयक स्मृति रूप में हमारे भीतर विद्यमान रहें।

१८. दया – परदुख से दुखी होकर दुख-निवारण की इच्छा दया है। यह दया सात्त्विकादि भेद से त्रिविध है। नि:स्वार्थभाव से अनुष्ठित होने से वह सात्त्विकी दया है। जीव की उच्चगति के लिए ऐसी दया अनुष्ठान करने योग्य है। हमारी माता दयारूपिणी हैं। जीवों का असीम दुख देखकर वह व्यग्र हो जाती हैं। श्रीमाँ सारदारूप में वे कहती हैं – ''दया से मन्त्र देती हूँ।'' (मायेर कथा, अखण्ड प. २९०) ये दयारूपिणी प्रत्येक प्राणियों के दुख में दुखी होने के लिए हमें प्रेरणा देती हैं। क्योंकि वे सभी प्राणियों में विद्यमान हैं। दूसरे पर दयावान होकर वस्तुत: हमलोग माँ की कृपाप्राप्ति के योग्य बनते हैं। इसलिए सर्वप्राणियों में अधिष्ठित दयारूपिणी देवी हमारे लिये प्रणम्य हैं।

१९. तुष्टि – तुष्टि या सन्तुष्टि परम धन है। गीता में श्रीभगवान ने यदृच्छालाभसन्तुष्ट की प्रशंसा करते हुए कहा है –

संतुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चय:।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त: स मे प्रिय:''।।[२६]

महर्षि पतंजलि योगशास्त्र में संतोष का फल बताते हैं – **संतोषादनूत्तम: सुखलाभ:**[२७] – संतोष से अत्युत्तम सुखलाभ होता है। श्रीमाँ सारदा देवी ने भी कहा है – ''संतोष के समान धन नहीं है।'' अज्ञानतावश हमलोग कुछ भी करते हैं, तो फल-प्राप्त करने के लिये व्यग्र हो जाते हैं। फल की अप्राप्ति से अंसतोष एवं दुख होता है। उसी असंतोष से और भी अनेकों दुख होता है। जीव की इष्टप्राप्ति एवं अनिष्टपरिहार होने से, जिस भाव का उदय होता है, वही देवी का तुष्टि रूप है। इसी तुष्टिप्राप्ति हेतु साधक तुष्टिरूपिणी देवी से निरन्तर प्रार्थना करता है।

२०. मातृरूपा – 'मातृ' शब्द सभी जीवों की जननी के रूप में प्रसिद्ध है। शास्त्र में ब्राह्मी इत्यादि अष्टमातृका का उल्लेख मिलता है। फिर गौरी आदि षोड़शमातृका की पूजा होती है। मूलत: सभी जीवों की आदि जननी आद्याशक्ति महामाया हैं। शास्त्र कहते हैं, अव्यक्त प्रकृति से चर-अचर

सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड अभिव्यक्त है। **तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते**।[२८] इसलिए हे मात:! तुम्हीं सबकी जननी, मातृरूपिणी हो।

२१. भ्रान्ति – ज्ञान दो प्रकार का होता है – प्रमा या यथार्थ ज्ञान एवं भ्रान्ति या भ्रमज्ञान। जो वस्तु जैसी नहीं है, उसे उस रूप में जानना ही भ्रान्ति है। वह भ्रान्ति दो प्रकार की होती है – अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि एवं तत्त्व में अतत्त्वबुद्धि। वेदान्त दर्शन में कहा गया है – सम्वादी भ्रम एवं विसम्वादी भ्रम। पंचदशीकार ने एक रूपक के द्वारा इस विषय में कहा है –

दीपप्रभामणिभ्रान्तिर्विसम्वादिभ्रमः स्मृतः।

मणिप्रभामणिभ्रान्तिः सम्वादिभ्रम उच्यते।।[२९]

किसी व्यक्ति ने अन्धकार में दूर से प्रज्वलित दीप-प्रभा को देखकर मणि के भ्रम में मणि की प्राप्ति हेतु उधर प्रस्थान किया। किन्तु उसने देखा कि मणि नहीं, यह तो दीप जल रहा है। यह विसम्वादि भ्रम है। कोई मणिप्रभा प्रज्वलित देखकर मणि के भ्रम में वहाँ जाकर मणि को प्राप्त करता है। यह सम्वादि भ्रम है। उसी प्रकार सगुण-साकार उपासना ब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान जैसा यथार्थ वस्तु नहीं होने पर भी मुक्ति का कारण होता है। भ्रान्तिरूपिणी देवी के द्वारा कृपा करके भ्रम का आवरण दूर कर देने से जीव को मुक्तिफल करतलगत हो जाता है।

२२. व्याप्ति – देवी सर्वव्यापी हैं। वस्त्र में जैसे तन्तु, मणि-माला में जैसे धागा या सूत्र अनुस्यूत रहता है, उसी प्रकार सभी प्राणियों में देवी चक्षु आदि इन्द्रियों की अधिष्ठात्री के रूप में व्याप्त हैं। वे सभी इन्द्रियों की संचालिका हैं। श्रुति ने भी कहा है – **'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यत्'**[३०] इत्यादि। साधक चर-अचर सबमें अधिष्ठित सर्वव्यापिनी देवी को व्याप्ति रूप में प्रणाम कर रहे हैं।

२३. चिति – चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः – विश्व के सृष्टि-संहार में जो स्वतन्त्र हैं, वे चैतन्यमयी ही 'चिति' हैं। शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं। ब्रह्म एवं उनकी शक्ति अभिन्न हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – इसलिए ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। एक को मानो तो दूसरे को भी मानना पड़ता है। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि को मानो तो दाहिका शक्ति को भी मानना पड़ता है। बिना दाहिका शक्ति के अग्नि का विचार नहीं किया जा सकता है; फिर अग्नि को छोड़कर दाहिका शक्ति का विचार नहीं किया जा सकता। सूर्य को अलग करके उसकी किरणों की कल्पना नहीं की जा सकती, न किरणों को छोड़कर कोई सूर्य को ही सोच सकता है।[३२] स्वयं प्रकाशलीला चितिरूप में जो इस समग्र जगत् में व्याप्त हैं, साधक उनको प्रणाम कर रहे हैं।

देवीमाहात्म्य ग्रन्थ के अपराजिता स्तव में देवी को इन्हीं तेईस रूपों में हम प्राप्त करते हैं। किन्तु वह अन्य कई विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं। जिस प्रकार गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कह रहे हैं – **विष्टभ्याहमिंद कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।**[३३] श्रुति ने भी कहा है – **पादोऽस्य विश्वा भूतानि**।[३४] उस अनन्तरूपिणी की केवल अल्पमात्र ही इस स्तुति में अभिव्यक्त हुआ है, शेष सब अव्यक्त है। उस अनन्तरूपिणी को स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण अथवा कायिक, मानसिक एवं बौद्धिक रूप से 'नमस्तस्यै' पद के तीन बार उच्चारण के द्वारा प्रणाम निवेदन किया गया है। अन्त में 'नमो नम:' पद में चतुर्थ प्रणाम निवेदन किया गया है। जहाँ प्रणम्य, प्रणाम एवं प्रणामकर्ता में त्रिविध भेद विलय होकर एक अद्वैत सत्ता का स्फुरण होता है, वहाँ जीवब्रह्मैक्य बोध से साधक आनन्द में विभोर हो जाता है। उसी परमानन्द के स्वरूप में एकत्वबोध के लिए देवताओं द्वारा कृत अपराजितास्तव श्रद्धाभक्ति सहित पठनीय है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत श्रीश्रीचण्डी, अ.५,पृ.१८४ **२.** पं.वेंकटराजपुत्र हरिकृष्ण शर्मा, दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) पृ.२८० **३.** छान्दोग्योपनिषद,३/१४/१ **४.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत-२,पृ.८७१ **५.** श्रीश्रीचण्डी,५/५ **६.** दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) नागोजीभट्टकृत पृ.१४१ **७.** वेदान्तदर्शनम् १/१/२ **८.** छान्दोग्योपनिषद ६/२/३ **९.** दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) पृ.१४५ **१०.** ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड,५७/११ **११.** श्रीमद्भगवद्गीता,४/६ **१२.** श्रीश्रीचण्डी,५/१६ **१३.** दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) पृ.१४६ **१४.** वही,पृ.१४७ **१५.** योगसूत्र,१/१० **१६.** कठोपनिषद्,१/३/१ **१७.** श्रीशंकराचार्य, सौन्दर्यलहरी,१ **१८.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत-२,पृ.१०७१ **१९.** महाभारत आदिपर्व,६३/५२ **२०.**सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह, श्लोक २१२ पृ.२१२ **२१.**श्रीमद्भगवद्गीता,४/३१ **२२.** दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) गुप्तवती टीका,पृ.१४९ **२३.** बृहदारण्यक उपनिषद,२/४/५ **२४.** दुर्गासप्तशती (सप्तटीका) गुप्तवती टीका,पृ.१५० **२५.** योगदर्शन,१/११ **२६.** श्रीमद्भगवद्गीता,१२/१४ **२७.** योगदर्शन,२/४२ **२८.** श्रीश्रीचण्डी,१२/३७ **२९.** पंचदशी,९/६ **३०.** केनोपनिषद,१/२ **३१.** प्रत्यभिज्ञाहृदय – राजानक क्षेमराजकृत कश्मीरी शैवागम ग्रन्थ **३२.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत-१, पृ. ८३ **३३.** श्रीमद्भगवद्गीता,१०/१२ **३४.** पुरुषसूक्तम्।

प्रश्नोपनिषद् (२९)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

मन-बुद्धि आदि 'करण' आत्मा में लय होते हैं

तस्मै स होवाच। यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छत: सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति। ता: पुन: पुनरुदयत: प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति। तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते।।२।। (४/२)

अन्वयार्थ – स: ह (उन प्रसिद्ध डपिप्पलाद.ने) तस्मै (उन डप्रश्नकर्ता.से) उवाच (कहा) – गार्ग्य (हे गार्ग्य), यथा (जैसे) अस्तम् (अस्ताचल को) गच्छत: (जाते हुए) अर्कस्य (सूर्य की) सर्वा: (सारी) मरीचय: (किरणें) एतस्मिन् (उसके) तेजोमण्डले (ज्योति-मण्डल में) एकीभवन्ति (एकीभूत हो जाती हैं); (उसी से) पुन: पुन: (बारम्बार) उदयत: (उदय होते हुए) ता: (वे किरणें) प्रचरन्ति (फैलती हैं); एवम् ह वै (इसी तरह) तत् सर्वम् (वह सब कुछ) (निद्रा के समय) परे देवे (परम देव रूप) मनसि (मन में) एकीभवति (एकीभूत हो जाता है)। तेन (इस कारण) तर्हि (उस समय) एष: (यह) पुरुष: (प्राणी) – न शृणोति (न सुनता है), न पश्यति (न देखता है), न जिघ्रति (न सूँघता है), न रसयते (न रस लेता है), न स्पृशते (न स्पर्श करता है), न अभिवदते (न बोलता है), न आदत्ते (न ग्रहण करता है), न आनन्दयते (न आनन्द लेता है), न विसृजते (न मल-मूत्र का त्याग करता है) (और), न इयायते (न चलता है), आचक्षते (लोग कहते हैं) (वह) – स्वपिति (सो रहा है) इति ।।

भावार्थ – उन प्रसिद्ध पिप्पलाद ने प्रश्नकर्ता से कहा – हे गार्ग्य, जैसे अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की सारी किरणें उसी के ज्योति-मण्डल में एकीभूत हो जाती हैं; (वहीं से) बारम्बार उदय हो रहे उस (सूर्य) की किरणें फैलती हैं; वैसे ही वह सब कुछ निद्रा के समय परम देव रूप मन में एकीभूत हो जाता है। इसीलिए उस समय यह प्राणी न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न रस लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न आनन्द लेता है, न मल-मूत्र त्याग करता है और न चलता है; लोग कहते हैं, वह सो रहा है।।

भाष्य – तस्मै स ह उवाच आचार्य: – शृणु हे गार्ग्य, यत् त्वया पृष्टम्। यथा मरीचय: रश्मय: अर्कस्य आदित्यस्य अस्तम् अदर्शनम् गच्छत: सर्वा: अशेषत: एतस्मिन् तेजो-मण्डले तेजोराशि-रूपे एकीभवन्ति, विवेक-अनर्हत्वम् अविशेषताम् गच्छन्ति, मरीचय: तस्य एव अर्कस्य ता: पुन: पुन: उदयत: उद्गच्छत: प्रचरन्ति विकीर्यन्ते।

भाष्यार्थ – प्रसिद्ध आचार्य (पिप्पलाद) ने उनके प्रति कहा – हे गार्ग्य, जो तुम्हारे द्वारा पूछा गया है, उसे सुनो – जैसे अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य की असंख्य किरणें उस तेजो-मण्डल के साथ एकीभूत हो जाती हैं, भिन्न-भिन्न पहचान के अयोग्य हो जाती हैं, (और) पुन: पुन: उदय होते हुए सूर्य की किरणें (पुन: पुन:) फैल जाती हैं।

यथा अयम् दृष्टान्त:, एवं ह वै तत् सर्वम् विषय-इन्द्रिय-आदि-जातम् परे प्रकृष्टे देवे द्योतनवति मनसि चक्षु: आदि-देवानाम् मन:-तन्त्रत्वात् परो देवो मन: तस्मिन् स्वप्न-काले एकीभवति। मण्डले मरीचिवत् अविशेषताम् गच्छति। जिजागरिषो: च रश्मिवत् मण्डलात् मनस: एव प्रचरन्ति स्व-व्यापाराय प्रतिष्ठन्ते।

जैसा इस दृष्टान्त में है, वस्तुत: वैसे ही समस्त इन्द्रिय तथा विषय आदि – उस प्रकृष्ट देव में – चूँकि नेत्र आदि के देवता, पूर्ण प्रकाशवान मन के पराधीन हैं; अत: स्वप्न के समय (ये सब) उसी श्रेष्ठ देवता – मन के साथ एकीभूत हो

जाते हैं; सूर्यमण्डल में रश्मियों के समान अपनी विशेषताओं को खो बैठते हैं। (फिर) सूर्यमण्डल में रश्मियों के समान ही, जागते हुए मनुष्य के मन से (ये इन्द्रियाँ आदि) निकलकर अपने-अपने कार्य में स्थित हो जाती हैं।

यस्मात् स्वप्न-काले श्रोत्र-आदीनि शब्दादि-उपलब्धि-करणानि मनसि एकीभूतानि इव करण-व्यापाराद् उपरतानि, तेन तस्मात् तर्हि तस्मिन् स्वाप-काले एषः देवदत्त-आदि-लक्षणः पुरुषः न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते न अभिवदते न आदत्ते न आनन्दयते न विसृजते न इयायते स्वपिति इति आचक्षते लौकिकाः।।२।। (४/३)

(क्रमशः)

पृष्ठ ४४४ का शेष भाग

लोग दुनियादारी कुछ भी नहीं जानते, इसीलिए तो दिन-रात परिश्रम करके भी अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध नहीं कर पाते। आओ, हम सब मिलकर इनकी आँखें खोल दें। मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ, इनके और मेरे भीतर एक ही ब्रह्म, एक ही शक्ति विद्यमान है, केवल विकास की न्यूनाधिकता है। सभी अंगों में रक्त का संचार हुए बिना किसी भी देश को कभी उठते हुए देखा है? एक अंग के दुर्बल हो जाने पर, दूसरे अंग के सबल होने से भी उस देह से कोई बड़ा काम फिर नहीं होता, इस बात को निश्चित जान लेना।''[६]

स्वामीजी के इन्हीं विचारों के अनुसार रामकृष्ण मठ और मिशन ने प्रारम्भ से ही जाति-पाति एवं ऊँच-नीच के भेदभाव को त्याग कर अपना धर्मकार्य आरम्भ किया है। आरम्भ में कुछ कट्टरपंथी हिन्दुओं ने इसका कड़ा विरोध किया। रामकृष्ण मिशन की हरिद्वार शाखा में सेवारत संन्यासियों को 'भंगी साधु' कहते थे। धीरे-धीरे निःस्वार्थ सेवा-भाव और प्रेम की विजय हुई। जब रोगग्रस्त संन्यासियों को स्वयं इन साधुओं का लाभ लेना पड़ा, यह टीका-टिप्पणी समाप्त हो गयी। (शेष अगले अंक में)

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य खण्ड-९ पृ.२२८ **२.** वि. सा. खण्ड-५ पृ.१२०-१२२ **३.** वि.सा. खण्ड-६ पृ.३९३ **४.** वि. सा. खण्ड-३ पृ.३४५ **५.** वि.सा. खण्ड-३ पृ.३४५ **६.** वि.सा. खण्ड ६ पृष्ठ-२१५.

पृष्ठ ४४७ का शेष भाग

महाराज – हाँ।

– महाराज ! तब भेद-बुद्धि और नारायण-बुद्धि दोनों एक साथ रहेगी?

महाराज – क्यों नहीं रहेगी? तुम यदि लाल कुर्ता पहनो, हरा कुर्ता पहनो, पीला कुर्ता पहनो, तो क्या तुम बदल जाओगे? तुम तो तुम ही रहोगे। व्यवहार में भेद हुआ, किन्तु स्वरूप तो एक ही रहा। श्रीमद्भागवत में एक श्लोक है –

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्।

त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः।। १०.३.१९

कह रहे हैं – हे विभु ! बहुरूपधारी तुमसे इस जगत की सृष्टि, स्थिति, लय हो रही है, किन्तु तुम निर्गुण, निष्क्रिय हो। तब क्यों ये सब तुम्हारे द्वारा हो रहा है? तब कहते हैं – तुम्हारे द्वारा नहीं हो रहा है, गुण के द्वारा हो रहा है। किन्तु गुण तुम्हारा आश्रय करके है, इसलिए गुण की क्रिया तुम पर आरोपित हो रही है। ब्रह्म और ईश्वर इसलिए परस्पर भिन्न नहीं हो रहे हैं। ईश्वर की सृष्टि-स्थिति और लय कार्य, यह ब्रह्म पर आरोपित है। **(क्रमशः)**

पहले संसार करने के बाद तुम भगवान को प्राप्त करने आए हो; ऐसा न करके अगर तुम पहले भगवान का लाभ कर लेते और बाद में संसार करते तो तुम्हें कितना आनन्द मिलता !

हरि अर्थात् वह जो हमारे हृदय को हर लेते हैं (हरति); हरिबल अर्थात् हरि ही हमारे बल हैं।

– श्रीरामकृष्ण देव

कर्नाटक का भगीरथ : विश्वेश्वरय्या

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

अँग्रेजों के शासनकाल की बात है। रेलगाडी के एक डिब्बे में सांवले रंग का एक भारतीय यात्री साधारण वेशभूषा में यात्रा कर रहा था। उस रेलगाडी में अधिकतर यात्री अँग्रेज थे। रेल में बैठे अँग्रेज गम्भीर मुद्रा में बैठे उस भारतीय को मूर्ख तथा अशिक्षित समझकर उसका हँसी-मजाक कर रहे थे। उस व्यक्ति ने उनकी बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और अचानक उस रेलगाडी की जंजीर खींच दी। तीव्र गति से चल रही रेल तुरन्त रुक पड़ी। सभी यात्री उस पर क्रोधित हुए। कुछ समय पश्चात् एक गार्ड आया और उसने पूछा, 'जंजीर किसने खींची?' व्यक्ति ने उत्तर दिया, 'मैंने खींची है?' जंजीर खींचने का कारण पूछने पर व्यक्ति ने कहा, 'मुझे ऐसा लग रहा है कि २२० गज (एक फर्लांग) की दूरी पर रेलगाड़ी की पटरी उखड़ गई है। गार्ड ने पूछा, 'आपको कैसे पता चला?' उसने कहा, 'मुझे आभास हुआ है कि रेल की स्वभाविक गति में अन्तर आया है। पटरी से गूँजनेवाली आवाज की गति से खतरे का संकेत मिल रहा है।' गार्ड उस यात्री को कुछ दूरी पर ले गया और उस स्थान पर पटरी के नट-बोल्ट बिखरे हुए तथा पटरी की सन्धियाँ खुली हुई देखकर अचम्भित हुआ। अन्य यात्रियों को ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति को वे डाँट रहे थे उसने अपनी सूझबूझ से उनका जीवन बचा लिया। अब वे उस यात्री की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

गार्ड ने उस व्यक्ति से पूछा, 'आप कौन हैं?' उस यात्री ने उत्तर दिया, 'मेरा नाम मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरय्या है और मैं एक अभियन्ता (इंजिनियर) हूँ। उनके मुख से यह नाम सुनते ही सब यात्री स्तब्ध रह गए, क्योंकि उस समय तक पूरे देश में उनकी प्रसिद्धि फैल चुकी थी। लोग उनसे क्षमा-याचना माँगने लगे। किन्तु डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या ने उन लोगों से कहा, ''जो कुछ भी आप लोगों ने मेरे प्रति कहा होगा, मुझे तो उसके बारे में कुछ भी याद नहीं हैं।''

डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरय्या का जन्म १५ सितम्बर, १८६० में मैसूर के कोलार जनपद के चिक्काबल्लापुर तालुका में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीनिवास शास्त्री तथा माता का नाम वेंकाचम्मा था। धन के अभाव में उन्होंने १८८० में बैंगलुरु के सेण्ट्रल कॉलेज से बीए की पढ़ाई पूरी करने के बाद १८८३ में पूना के साईंस कॉलेज से एलसीई (वर्तमान में बीई या बीटेक के समकक्ष) की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उनकी प्रतिभा को देखकर महाराष्ट्र शासन ने उन्हें सहायक अभियन्ता के पद पर नियुक्त कर दिया।

एक बार अमेरिका की फैक्टरियों तथा उद्योगों की कार्य-प्रणालियों एवं शैलियों को देखने के लिए भारत से कुछ लोगों को भेजा गया। फैक्टरी के एक अधिकारी ने एक विशिष्ट मशीन की ओर संकेत किया और कहा, 'यदि आप इस मशीन के बारे में जानना चाहते हैं, तो आपको ७५ फुट उँची सीढ़ी पर चढ़कर देखना पड़ेगा।' भारतीयों में से जिनकी आयु सबसे अधिक थी और जो भारतीयों का नेतृत्व कर रहे थे, वे आगे आये और उन्होंने कहा, 'मैं अभी चढ़ता हूँ।' वे तुरन्त ही तीव्रता से सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए आगे आये। तुरन्त ही मशीन का निरीक्षण करने के बाद वे व्यक्ति ७५ फूट की ऊँचाई से नीचे आये। अधिकतर लोग ऊँचाई के भय से पीछे हट गए। केवल तीन अन्य व्यक्ति ही उनके साथ इस कार्य को पूरा कर पाए। यह व्यक्ति थे भारत के प्रसिद्ध और विख्यात प्रथम भारतीय अभियन्ता (इंजीनीयर), भारतीय अभियांत्रिकी के जनक, भारत रत्न से सम्मानित डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या।

डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या को कर्नाटक का भगीरथ माना जाता है। कर्नाटक के कृष्णराजा सागर (केआरएस) बांध तथा ग्वालियर के तिगरा बाँध का निर्माण, भद्रावती आयरन

शेष भाग पृष्ठ ४६० पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (१६)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

अवतारः

श्रीरामकृष्ण उवाच

महत्सु दारुखण्डेषु प्लवमानेषु चाम्भसि।।
तत्रासीना मनुष्यास्तु तरन्ति बहवः सुखम्।।१।।

– श्रीरामकृष्ण बोले – बड़ी-बड़ी लकड़ियों के खम्भे जब पानी में तैरते हुए आते हैं, तब उसके ऊपर बहुत से लोग भी चढ़कर पार हो जाते हैं।।१।।

निमज्जन्ति न वै तानि तत्र फल्गुनि दारुनि।।
आसीने काक एकस्मिन् तन्निमज्जति तत्क्षणात्।।२।।

– वे सब नहीं डूबते। परन्तु एक सामान्य लकड़ी पर एक कौआ भी बैठ जाय, तो वह उसी क्षण डूब जाता है।।२।।

अवतीर्णेऽवतारादौ तमाश्रित्य तरेच्छतम्।।
कष्टेन महता सिद्धः कथमपि तरेत् स्वयम्।।३।।

– उसी प्रकार अवतार आदि के अवतीर्ण होने पर सैकड़ों लोग उनका आश्रय लेकर तर जाते हैं। परन्तु सिद्ध मनुष्य बहुत परिश्रम करके किसी प्रकार केवल स्वयं ही तर पाते हैं।।।३।।

रेलशकटयन्त्रं तु यात्यसौ स्वयमेव हि।।
कर्षति शकटांश्चापि गुरुभारवतो बहून्।।४।।

– रेलगाड़ी का इंजन स्वयं भी जाता है और कई बहुत भारी गाड़ियों को भी खींचकर ले जाता है।।४।।

अवतारादिरागम्य नयति च तथैव हि।।
जीवानाञ्च सहस्राणि कृपयेश्वरसन्निधिम्।।५।।

।।ॐ इति श्रीरामकृष्णगीतासु अवतारः नाम चतुर्थोऽध्यायः।।

– उसी प्रकार अवतार आदि भी आकर हजारों मनुष्यों को कृपा करके ईश्वर के निकट ले जाते हैं।।५।।

।। ॐ इति श्रीरामकृष्णगीता में अवतार नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।। (क्रमशः)

भजन

अनन्तरूपिणि हैं माँ श्यामा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

माँ श्यामा की परम कृपा से, पलता है यह जग अविराम।
शिव भी जिनके चरण तले हैं, वे माँ ही हैं सुख की धाम।।
अनन्तरूपिणि हैं माँ श्यामा, दुर्गा-काली उनके नाम।
काली बनकर ताण्डव करतीं, दुर्गा की छवि है अभिराम।।
माँ श्यामा हैं निखिलस्वामिनी, प्रणतपालिनी हैं गतकाम।
सबकी हैं वे संकटमोचिनि, सुरगणपूजित आठों याम।।
वे ही दैत्य विनाशिनि देवी, भजो सदा ही उनका नाम।
मुक्तकेशिनि अट्टहासिनि, स्वीकारो मेरे परनाम।।

कविता

मैं तो अंश तुम्हारा

मोहन सिंह मनराल

मैं तो अंश तुम्हारा, प्रभु जी मैं तो अंश तुम्हारा।
फिर क्यों फिरता मारा-मारा, मैं तो अंश तुम्हारा।।
भटक रहा था इस जग वन में, दर-दर हो बंजारा।
तुमने नाम दिया जो अपना, जीने का मिला सहारा।।
प्रभु जी मैं तो अंश तुम्हारा।।
कामादि व्याधि ने घेर लिया, तन-मन झुलसा सारा।
तुम्हारी अमृतवाणी सुनकर, पाया है छुटकारा।।
प्रभु जी मैं तो अंश तुम्हारा।।
तुमने जीने की कला सिखाई, जीवन से दुःख हारा।
तुम ही मात-पिता हो मेरे, हो जीवन के ध्रुवतारा।।
प्रभु जी मैं तो अंश तुम्हारा।।
इस तन को मैं मान लिया, जड़ को चेतन जान लिया।
तुमने सुख की राह दिखाई, संशय दानव मारा।।
प्रभु जी मैं तो अंश तुम्हारा।।

भगवान का नाम व्यर्थ नहीं जाता

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

जब हम आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हैं, तो पुण्य के प्रभाव से हमें साधु-संग मिलता है। उनके सत्संग से हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है। हमारी सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है। अपने शुभकर्मों से संसार में हमें सब सुख-सुविधा मिली है, तो हमें अधिक-से-अधिक सत्संग, सच्चर्चा और साधन-भजन करना है। इन सबका परिणाम सदा अच्छा ही होगा। हमारी कुवासनाएँ धीरे-धीरे शिथिल हो जायेंगी, तब अन्त समय में हम भगवान को छोड़ और कुछ नहीं चाहेंगे। हमारा मन शुद्ध, पवित्र हो जायेगा। साधना की दृष्टि से नाम-जप ही सच्ची साधना है। इससे हमारे सारे विकार हट जाते हैं।

संसार में अपना कर्तव्य पूरा करके भगवान का नाम जप करना है, भगवान से प्रार्थना करनी है, तब कहीं ईश्वर की कृपा होगी। श्वास लेना भी ईश्वर की कृपा है। ईश्वर की कृपा के बिना कुछ नहीं होता। खाली समय में लोग भगवान का नाम न लेकर निरर्थक काम करते रहते हैं। खाना-पीना-सोना, व्यर्थ चिन्तन और चर्चा इसी में अपना समय गवाँ देते हैं। जबकि हमें हर श्वास का नाम-जप से सदुपयोग करना चाहिये। ईश्वर ने मनुष्य को महान शक्ति दी है। वह चाहे तो मनुष्य के समान भी रह सकता है, चाहे तो पशुओं के जैसा भी जीवन बीता सकता है। मनुष्य के समान जीवन बीताने से स्वर्ग में जायेगा, पशुओं के समान जीवन बीताने से नर्क में जायेगा। इसका निर्णय उसे करना है। यदि हम अध्यात्म मार्ग के पथिक हैं, तो हमें भगवान का नाम लेकर रहना है, समय का सदुपयोग करना है। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि अपनी श्वास के साथ अपनी प्रार्थना को भी जोड़ो। श्वास-श्वास में ईश्वर का चिन्तन होना चाहिए। अगर एक बार भी हम अन्त:करण से भगवान का नाम लेते हैं, तो हम मुक्त ही हैं। भगवान का नाम व्यर्थ नहीं जाता। अगर गुरु की कृपा हुई, तो संसार की सभी समस्याएँ मिट जायेंगी।

भगवान का नाम लेने से एक बड़ी सुविधा यह है कि हम रहते तो संसार में हैं, लेकिन भगवान के नाम से सतत जुड़े रहने के कारण हम उनके पास ही रहते हैं। भक्त को अपने जीवन में गहराई से देखना चाहिए कि क्या उसमें कुछ परिवर्तन हो रहा है? वह भगवान की ओर बढ़ रहा है या नहीं? अगर भगवान की ओर बढ़ रहा है, उसमें परिवर्तन हो रहा है, तो वह सही मार्ग से जा रहा है।

मनुष्य के मन में एक लोभ की प्रवृत्ति होती है। वह बहुत लोभ में फँसकर विवेक-विचार खो बैठता है। एक बात याद रखना कि तुम्हारा पहली बार जन्म नहीं हुआ है। अनेक जन्म हुए हैं। भोग भोगने की अपूर्ण इच्छाओं के कारण पुन:-पुन: जन्म लेना पड़ता है। संसार का सारा सम्बन्ध शरीर से होता है। अपने जीवन में हम विवेक-विचार नहीं करते। विवेक उपयोग नहीं करने से लोभ-मोह में फँस जाते हैं। ऐसी मूर्खता कभी नहीं करनी है। महापुरुष कहते हैं कि भले ही भूत के समान अकेले रह जाना, लेकिन जो लोग संसार के लोभ-मोह की ओर ले जाते हैं, उनका संग कभी नहीं करना। हमें जीवन भर के लिये अच्छी आदतें डालनी होंगी। एक बार भी लोभ की आदत पड़ गयी, तो सारा जीवन उसमें ही जाता है। हम बेलूड़ मठ गये, कुछ दिन रहे, तो केवल रहने से मुक्ति नहीं मिलेगी। जहाँ भी रहें, वहाँ हमें बेलूड़ मठ दिखे, तब हमें मुक्ति मिलेगी।

मन की दुर्बलता रहने से लोभ उत्पन्न होता है। जब मन में लोभ की वृत्ति आये, तो विवेक से विचार करें। इससे लोभ की वृत्ति कम हो जाती है। अच्छे विचार से अच्छी आदत बनती है। यही आध्यात्मिक जीवन है। आध्यात्मिक जीवन की उपयोगिता समझनी चाहिए। हमारे आध्यत्मिकता के पात्र में कोई छेद न रहे, यह देखना चाहिए। बार-बार आत्मनिरीक्षण करना चाहिये। हमें वर्तमान में जो कुछ मिला है, वह साधना के लिए मिला है। सभी कर्म हमारी साधना में सहायक हों, ऐसी दृष्टि रखनी चाहिए। ऐसी छोटी-छोटी बातें आध्यात्मिक जीवन में काम आती हैं। ○○○

मैं आपको संस्कृत में पत्र लिखता था

स्वामी अनिलयानन्द, रामकृष्ण मठ, बैंगलुरू

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधु समागमः।।

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है, इसलिए साधु तीर्थरूप है। तीर्थ का फल समय पर मिलता है, (लेकिन) साधु-संगति तत्काल ही फल देती है।

सत्संग से एक युवा कैदी का जीवन परिवर्तन

साधु-संगति की महिमा अपरम्पार है। इसी का प्रमाण देनेवाली यह सत्य घटना भारतवर्ष के एक दक्षिणी प्रान्त के एक जिले में 'रामकृष्ण-भावप्रचार समिति' के एक सम्मेलन में घटित हुई। सम्मेलन में कई विद्वान साधुओं का समागम हुआ था। उसी सम्मेलन में एक दिन एक विद्वान संन्यासी के प्रवचन के बाद अल्पाहार के समय, श्रोतृवर्ग में एक साधु बैठे थे। श्रोता साधु उक्त विद्वान वक्ता संन्यासी की खोज करने लगे और कुछ समय पश्चात् उनसे मिलने में सफल रहे। दोनों में जो वार्तालाप हुआ था, उसका प्रारम्भ अत्यन्त प्रेरणादायी है। वह कुछ इस प्रकार था –

श्रोता साधु – श्रद्धेय महाराजजी प्रणाम ग्रहण करें।

वक्ता संन्यासी – जय रामकृष्ण। कहिए।

श्रोता साधु – क्या आपने मुझे पहचाना महाराजजी?

वक्ता संन्यासी – क्षमा करें, लेकिन हम दोनों पहले कभी मिले हैं, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है।

श्रोता साधु – आपकी साधुता को नमस्कार। आप क्षमा माँगें, ऐसी मेरी योग्यता नहीं है और विलम्ब के कारण विस्मरण स्वाभाविक है। महाराजजी, आपको इतना तो स्मरण होगा कि जब आप आश्रम से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका के सम्पादक थे, उस वक्त कोई साधु आपको संस्कृत में पत्र लिखता था और आप उसे उत्तर भी देते थे।

वक्ता संन्यासी – (कुछ सोचते हुए) हाँ, यह घटना मुझे थोड़ी-थोड़ी याद है। किन्तु यह तो कई वर्ष पूर्व की घटना है। क्या आप ही वे साधु है, जो संस्कृत भाषा में पत्र लिखा करते थे?

श्रोता साधु – मेरी उच्छृंखलता को क्षमा करें। हाँ, मैं ही वह साधु हूँ।

वक्ता संन्यासी – (सन्तोष से) अति सुन्दर ! आपके पत्रों में लिखी भाषा एवं उल्लिखित विचार, दोनों ही परिपक्व रहते थे तथा उनको पढ़ने में अति आनन्द मिलता था।

श्रोता साधु – (नम्रतापूर्वक) किन्तु सत्य तो यह है महाराजजी कि मेरी प्रेरणा के स्रोत आप ही रहे हैं।

वक्ता संन्यासी – वह कैसे? (आश्चर्य से)

श्रोता साधु – क्या आपको याद है कि नैतिक जीवन मूल्यों का और श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द द्वारा प्रचारित आध्यात्मिकता का प्रचार-प्रसार करते हुए आप कारागृहों में जाते थे?

वक्ता साधु – हाँ। बिलकुल याद है।

श्रोता साधु – (भावुकतापूर्वक) महाराजजी, आज जो आपके सामने खडा है, (अपने स्वयं की ओर निर्देश करते हुए) वह भी उस समय किसी कारावास में एक कैदी के रूप में था। अपने पूर्व जीवन में मैं कई अपराध कर चुका था। मुझे सजा मिली और मैं एक कारागार में सजा काट रहा था। मेरा जीवन भी एक सामान्य कैदी की तरह व्यतीत हो रहा था।

उन्हीं दिनों कारागार में आपका सत्संग हुआ। सत्संग में मैं भी उपस्थित था। जब से मैं आपके सुधार-कार्यक्रम में भाग लिया, तब से मैं अपने अन्दर कुछ परिवर्तन-सा अनुभव करने लगा। आपके द्वारा प्रदत्त पुस्तकें पढ़ने से मन में सकारात्मक परिवर्तन होने लगा। सद्-विचारों का चिन्तन-मनन करना अच्छा लगने लगा। कुछ ही वर्षों में मेरी सजा

भी समाप्त हुई।

वक्ता साधु उसकी बातें बहुत सावधानी से सुन रहे थे।

दृढ़ निश्चय

कारावास से बाहर आते ही मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अब गुनाहों की खाई में नहीं गिरना है। लेकिन मेरे सामने प्रश्न था अब मैं क्या करूँ? तभी मन में विचार आया, 'अरे, कारागृह में जब सत्संग चलते थे, तब साधु महाराज संस्कृत के कई श्लोक उद्धृत करते थे एवं वह उनके मधुर कण्ठ से सुनना अच्छा लगता था। क्यों न मैं संस्कृत सीखूँ, जो कि ज्ञान का भण्डार है। मैंने एक व्यक्ति से संस्कृत सीखना प्रारम्भ किया, पढ़ते-पढ़ते सद्-विचारों के प्रभाव से मन में वैराग्य की तरंगें उठने लगीं। घर-परिवार तो मेरा था ही नहीं। अब बस ईश्वर की आराधना और मानवता की सेवा करना ही जीवन का ध्येय मानकर संन्यास-आश्रम में प्रवेश किया। लगभग यह वही समय था, जब मैं आपसे संस्कृत में पत्र-व्यवहार किया करता था। मन में जो कुछ भी संशय उठता था, आपके द्वारा भेजे गए पत्रों से उसका निवारण हो जाता था। बस सद्-विचारों का प्रभाव और साधु के सान्निध्य से मेरा पूरा जीवन-प्रवाह ही बदल गया। मेरा आपसे सम्पर्क किन्हीं कारणों से खण्डित तो हुआ, लेकिन आप सदा एक प्रेरक के रूप में मेरी स्मृति में थे। आज इस सम्मेलन में पुनः आपका सान्निध्य प्राप्त हुआ, मैं धन्य हुआ। ...

वक्ता साधु यह सुनते-सुनते अन्तर्मुख हो गए थे। उनका मन गहरा चिन्तन में डूबा हुआ था, लेकिन मुखमण्डल पर एक असीम शान्ति और प्रसन्नता झलक रही थी, वे सोच रहे थे, ''क्या महिमा है सत्संग की ! कभी सुना था डाकू रत्नाकर ऋषि वाल्मीकि हो गए, डाकू अंगुलीमाल भिक्षु बन गए और आज मेरे सामने .....'' वे निःस्तब्ध रहे। भगवान की कृपा और सत्संग की महिमा से संन्यासी का मन गद्गद हुआ।

कहा जाता है कि जब जागे तभी सबेरा। यह बात इस कैदी युवक के जीवन में सत्य प्रमाणित होती दिख रही है। वह पहले एक कैदी था, अपराध में लिप्त था, किन्तु एक साधु के सम्पर्क में आकर जीवन में वैराग्य धारण कर साधु हो गया।

इसीलिए जीवन में कभी भी, किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में निराश न होकर जीवन में एक दृढ़ लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ते रहना चाहिए। ○○○

पृष्ठ ४५६ का शेष भाग

एण्ड स्टील वर्क्स, मैसूर सैंडल ऑयल एण्ड सौप फैक्टरी, मैसूर विश्वविद्यालय, बैंक ऑफ मैसूर की स्थापना ये सारी महान् उपलब्धियाँ उनके असाधारण प्रयासों से सम्भव हुई हैं। डॉ.एम विश्वेश्वरय्या यूनिवर्सिटी, विश्वेश्वरय्या कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, बैंगलोर, विश्वेश्वरय्या प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, बेलगावी, विश्वेश्वरय्या राष्ट्रीय प्रोद्यौगिकी संस्थान (VNIIT), नागपुर जैसे इंजीनियररिंग कॉलेजों के नाम उनके सम्मान में रखे गये हैं।

डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या को सन् १९११ में ऑर्डर ऑफ द इंडियन एम्पायर (CIE) और १९१५ में जब मैसूर के दीवान थे उन्हें नाइट कमांडर ऑफ द ऑर्डर ऑफ द इंडियन एम्पायर (KCIE) नियुक्त किया गया।

सर डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या एक ईमानदार, कुशल, दक्ष, कर्तव्य के प्रति निष्ठावान और समय के अच्छे प्रबन्धक थे। वे अपने कार्य के प्रति समर्पण का भाव रखते थे। औद्योगिकी इकाइयों की स्थापना में उनके महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय योगदान के लिए उन्हें सदैव याद रखा जायेगा। भारतीय अभियांत्रिकी के जनक सर डॉ.एम. विश्वेश्वरय्या को शत शत नमन। ○○○

डुबकी लगाओ

भिक्षु विशुद्धपुत्र

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज

प्रथम भेंट

पूजनीय विशुद्धानन्द महाराज जी का प्रथम दर्शन मैंने छात्रावस्था में रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर के १११ नं. रसा रोड के भवन में किया था। पूजनीय महाराज जी वर्षा के आरम्भ में बेलूड़ मठ से अपने द्वारा स्थापित मोराबादी आश्रम में जाने के रास्ते में यहाँ आते थे। बाद में कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण मन्दिर की स्थापना के उत्सव में भी उनका दर्शन किया था। लेकिन कहीं उनसे बातचीत करने का सुयोग नहीं हुआ। पहली बार बात करने का सुयोग मिला, जहाँ तक याद आता है, १९५२ ई. की सरस्वती पूजा के दिन शाम को मैं और मेरे एक मित्र बेलूड़ मठ गए थे। मित्र भी मेरी ही तरह कल्चर इंस्टिट्यूट में आता-जाता था और पूजनीय महाराज का दूर से ही दर्शन किया था। मैंने उससे कहा, ''चलो, आज महाराज के पास चलें।'' उसने उत्तर दिया, ''क्या मिलने देंगे?'' मैंने कहा, ''चलो, न !'' यह कहकर हम पूजनीय महाराजजी बेलूड़ मठ में जिस भवन में रहते थे (गिरीश मेमोरियल) उसके सामने जाकर खड़े ही हुए थे कि मित्र ने कहा, ''यह देखो, गेट पर 'प्राइवेट' लिखा है, भीतर जाने पर शायद कोई डाँटेगा।'' मैंने कहा, ''चलो न !'' यह कहकर भीतर जाकर सीढ़ी से ऊपर चढ़कर सीधे महाराजजी के कमरे में पहुँच गया। उस समय दो-एक भक्त वहाँ बैठे हुए थे और पूजनीय महाराजजी उन लोगों के साथ बातें कर रहे थे।

हम लोगों के कमरे में घुसकर उन लोगों के पास बैठने के थोड़ी देर बाद ही वे लोग चले गए। उन लोगों के चले जाने के बाद महाराजजी ने हम लोगों का परिचय जानना चाहा। मैंने उत्तर दिया, ''हमलोग कल्चर इंस्टिट्यूट में जाते हैं, वहाँ कई बार आपका दर्शन किया है।'' मेरी बात सुनकर महाराजजी ने कहा, ''फिर इतने दिनों तक मिलकर बात क्यों नहीं की?''

मैंने कहा, ''भय !''

मेरी बात सुनकर महाराज जी ने बड़े प्यार से कहा, ''अच्छा, जहाँ भय रहता है, वहाँ प्यार रहता है क्या? बिल्ली और चूहा, इनके बीच प्यार होता है क्या? तो भय करोगे या भक्ति करोगे? कौन अच्छा है?'' मैंने कहा, ''भक्ति करना अच्छा है।'' ठीक इसी समय तीन-चार भक्त महाराजजी के कमरे में आकर उपस्थित हुए। उन्हें देखकर लगा कि वे लोग महाराजजी के परिचित हैं। उन लोगों के आते ही महाराजजी ने उनमें से एक व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा, ''क्यों मास्टर ! बहुत दिनों से मिले नहीं, क्यों?'' महाराज का प्रश्न सुनकर उन्होंने बताया, घर में कुछ असुविधा हो गई थी, इसीलिए आ नहीं पाए। इस समय वह असुविधा दूर हो गई है। मास्टर की बात सुनकर महाराजजी ने जानना चाहा कि क्या असुविधा हो गई थी और कैसे दूर हुई? महाराजजी की बात सुनकर मास्टर ने बताया कि उनके मकान का किरायेदार बहुत कष्ट दे रहा था, परन्तु वे उसे हटा भी नहीं पा रहे थे। तब एक व्यक्ति ने मास्टर से कहा, ''आप ठाकुर का नाम लीजिये।'' उनके कथनानुसार ठाकुर की शरण लेते ही सब ठीक हो गया। यह बात सुनते ही पूजनीय महाराज ने जरा कौतुक के सुर में कहा, ''ठाकुर की शरण लेते ही तुम्हारी समस्या दूर हो गई ! बहुत अच्छा ! वह दूर हुई कैसे?'' तब मास्टर ने महाराज जी को बताया, मुहल्ले के लड़कों ने किरायेदार को डराया-धमकाया, उसी से भाग गया। मास्टर की समस्या के समाधान का यह वर्णन सुनकर पूजनीय महाराजजी ने मास्टर को लक्ष्य करके कहा, ''अच्छा, मास्टर बता सकते हो, ठाकुर के तो अनगिनत भक्त हैं। यदि वे सभी कहें कि मेरे लड़के को परीक्षा में पास करा दो, लड़की की अच्छे घर में शादी की व्यवस्था कर दो, मकान की समस्या दूर कर दो, तो फिर ठाकुर विश्राम कब करेंगे?'' प्रश्न पूछने के साथ ही पूज्य महाराजजी ने एक कहानी सुनाई –

सच्चा भक्त कौन

कुरुक्षेत्र में युद्ध चल रहा था। युद्ध से फुरसत मिलने पर एक शाम को श्रीकृष्ण और अर्जुन भ्रमण करने निकले। अचानक अर्जुन ने देखा कि एक haggard loobing (जंगली जैसा) आदमी एक तलवार लिए घूम रहा है और बीच-बीच में तलवार से कुछ घास काटकर मुँह में डाल रहा है। इस आदमी को देखकर अर्जुन ने भगवान से प्रश्न किया, यह आदमी इस प्रकार क्यों घूम रहा है? अर्जुन का प्रश्न सुनकर भगवान ने कहा, ''चलो आगे चल कर देखें, यह आदमी क्यों इस तरह घूम रहा है?'' वे दोनों लोग चलते-चलते उस आदमी के पास पहुँचे। भगवान ने उससे पूछा, ''तुम तलवार लेकर क्यों घूम रहे हो?'' उसने उत्तर दिया, तीन व्यक्तियों को काट डालने के लिए वह तलवार लिए घूम रहा है। उसकी बात सुनकर भगवान ने जानना चाहा, ''वे तीनों कौन हैं?'' भगवान की बात सुनकर उसने बताया, वे तीनों हैं – अर्जुन, प्रह्लाद और द्रौपदी। उसकी बात पर आश्चर्य प्रकट करते हुए भगवान ने कहा, ''वे तो सभी भगवान के भक्त हैं। तुम उन लोगों को क्यों काटोगे?'' भगवान की बात सुनकर उस आदमी ने कहा, ''तुम कहते हो, वे लोग भक्त हैं। अहा ! उनके लिये मेरे भगवान को कितना कष्ट सहना पड़ा है? मूर्ख प्रह्लाद के लिये उनको एक बार हाथी के पाँव के नीचे, एक बार आग में, एक बार समुद्र में कूदना पड़ा। अर्जुन उनसे सारथी का काम ले रहा है और द्रौपदी ने विश्राम में विघ्न डाला है ! तुम कहते हो, ये भक्त हैं !'' कहानी सुनाकर पूजनीय महाराजजी ने मास्टर से कहा, ''बताओ, तो मास्टर, कौन बड़ा भक्त है ! जो कहता है – मेरी सब असुविधा दूर कर दो, वह अथवा जो कहता है – मुझे जितना कष्ट है, हो, किन्तु मेरे प्रभु को कोई कष्ट न हो, वह?'' पूजनीय महाराज जी की इस आवेग भरी बातें सुनकर सभी उपस्थित लोग भाव गम्भीर हो उठे। इसलिए कुछ देर तक निस्तब्ध रहने के बाद सभी एक-एक कर पूजनीय महाराजजी को प्रणाम कर चले गए। हम सभी महाराजजी को प्रणाम करके उठ रहे थे कि उन्होंने स्नेह-सिक्त सुर में कहा, ''जब भी यहाँ आना, मुझसे मिलना।''

स्थान – बेलूड़ मठ, २० जून १९५४

नौकरी करते समय भगवान को कैसे पुकारें

आज शाम को श्री श्रीठाकुर की आरती के बाद पूजनीय महाराजजी के कमरे में जाकर देखा कि कई भक्त बैठे हुए हैं और पूजनीय महाराजजी उन लोगों को बहुत आत्मविश्वास की बातें कह रहे हैं। उन लोगों ने पूजनीय महाराजजी से क्या प्रश्न किया था, मुझे नहीं मालूम था। फिर भी पूजनीय महाराजजी की बातें सुनकर लगा कि उन लोगों ने कहा था कि नौकरी करते हुए भगवान को पुकारने का समय नहीं मिलता। पूजनीय महाराज भक्तों को बता रहे थे, ''देखो, यदि पहले ही निश्चित कर लोगे कि नहीं कर पाओगे, तो फिर कैसे कर पाओगे? तुम लोग तो नौकरी करते हो, यदि आवश्यकता आ पड़े, तो आफिस में चार घंटा अधिक काम करोगे कि नहीं? यह जो अतिरिक्त काम किया, उसकी शक्ति कहाँ थी? – तुम्हारे भीतर ! तुम्हारे भीतर शक्ति न होती, तो फिर चार घंटा अधिक काम करने की शक्ति कहाँ से आई? जितना भी काम क्यों न हो, इच्छा रहने पर उसी में से समय निकाल लिया जा सकता है। देखो न बुद्धदेव को ! ध्यान में बैठकर संकल्प किया –

इहासने शुष्यतु मे शरीरम्
त्वगस्थि मांसं प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां
नैवासनात् कायमतश्चलिष्यते।। (ललित विस्तर)

''यह जो मैं आसन लगा कर बैठ गया; शरीर शुष्क हो जाय; त्वक्, अस्थि, मांस लय हो जायँ। फिर भी मैं बोधि प्राप्त किए बिना आसन से नहीं उठूँगा।'' इसके बाद भक्तगण पूजनीय महाराजजी को प्रणाम करके चले गए। मैं

भी सेवकों के घर में जाकर पूजनीय महाराज जी का थोड़ा प्रसाद, जो इस सन्तान के लिए प्रतिदिन रख देते थे, उसे खाकर और सेवकों का दिया फल, मिठाई खाकर फिर पूजनीय महाराजजी के पास लौट आया।

उत्तम स्वास्थ्य का उपाय

उस समय कमरे में कोई न था। मैं पूजनीय महाराज जी के चरणों के पास बैठकर थोड़ी पद-सेवा कर रहा था और पूजनीय महाराजजी चुपचाप बैठे हुए थे। अचानक मुझको सम्बोधित करते हुए कहने लगे, ''देखो, पूजनीय राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने एक बार ऋषिकेश में एक साधु को देखा था। उस समय उन साधु की उम्र थी नब्बे वर्ष, लेकिन उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। यह देखकर पूजनीय राजा महाराज ने उनसे प्रश्न किया था,

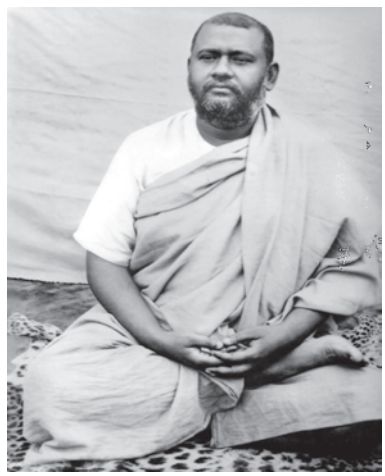

''महाराज, आपने ऐसा अच्छा स्वास्थ्य कैसे प्राप्त किया?'' साधु ने उत्तर में कहा था, ''देखो, बचपन में मेरी माँ ने मुझे एक उपदेश दिया था, उसी उपदेश का पालन करके मैंने यह स्वास्थ्य प्राप्त किया है।'' साधु का उत्तर सुनकर पूजनीय राजा महाराज ने जानना चाहा, ''वह उपदेश क्या था?'' उत्तर में साधु ने कहा, ''मेरी माँ ने कहा था, ''देख, जब तक भूख न लगे, तब तक कभी मत खाना।'' यह कहकर पूजनीय महाराज ने मुझसे प्रश्न किया, ''इसका पालन कर पाओगे?'' इसके बाद महाराज ने फिर प्रश्न किया, ''बता तो, भजन में अरुचि और भोजन में अरुचि, इसका अर्थ क्या है?'' मैंने उत्तर दिया, ''भगवान के नाम में अरुचि और खाने में अरुचि।'' इस पर महाराज जी ने कहा, ''भजन में अरुचि माने जप, ध्यान में अरुचि।'' यह कहकर फिर मुझसे प्रश्न किया, ''भोजन में अरुचि कब होती है?''

मैंने कहा, ''पेट भरा रहने पर।'' सुनकर पूजनीय महाराजजी ने कहा, ''ना रे ना। केवल क्या पेट भरा रहने पर ही अरुचि होती है?''

महाराजजी की बात सुनकर मैं फिर बोला, ''पेट खराब रहने पर।'' इस पर पूजनीय महाराजजी ने कहा, ''पेट खराब माने? कहो, लिवर फँक्शन खराब।'' यह कहकर फिर प्रश्न किया, ''ऐसा होने पर फिर पेट ठीक करने के लिए क्या करना होगा?''

भजन में रुचि कैसे होगी

मैंने कहा, ''डॉक्टर के पास जाना होगा।'' सुनकर पूजनीय महाराजजी ने फिर प्रश्न किया, ''भजन में रुचि लाने के लिए क्या करना होगा?'' मैंने उत्तर दिया, ''भगवान के प्रति अनुराग लाना होगा।''

मेरा उत्तर सुनकर पूजनीय महाराजजी ने फिर प्रश्न किया, ''क्या करने पर अनुराग आएगा?'' मैंने उत्तर दिया, ''श्री गुरु का संग।''

इस पर महाराज जी ने कहा, ''गुरु तो हैं ही। फिर भी साधुसंग। साधुसंग से अनुराग आएगा। तब भजन में रुचि आएगी।''

२१ जून, १९५४, जमींदार का नौकर

आज रात को पूज्यपाद महाराज ने तुलसीदासजी को किस प्रकार संसार से वैराग्य हुआ; बिल्वमंगल, श्रीरूप गोस्वामी आदि महापुरुष कुछ सामान्य घटनाओं के कारण कैसे मोहमुक्त हुए थे, यही बताया। फिर कहा – ''देखो, किसी से घृणा मत करना। ठाकुर किसको किस रास्ते से ले जाएँगे, तुम कैसे जानोगे?'' तुलसीदासजी स्त्री के प्रति इतने आसक्त थे कि वे अपने मायके जा रही हैं, यह जानते ही दौड़ पड़े और बीच रास्ते में उनको जा पकड़ा। तुलसीदासजी को इस प्रकार आते देखकर उसकी स्त्री ने तिरस्कार करते हुए कहा था, ''श्रीरामचन्द्र के प्रति यदि तुम्हारा इसका आधा भी आकर्षण होता, तो तुमको उनकी प्राप्ति हो जाती।'' बस, इतना सुनते ही तुलसीदासजी सब छोड़-छाड़कर चल पड़े काशीधाम। रूप गोस्वामीजी के जीवन में भी ऐसा ही हुआ। सनातन गोस्वामीजी वृन्दावन चले गए थे। रूप गोस्वामी जी भी वहाँ जाना चाहते थे, इसीलिए नवाब ने उनसे पूछा, ''अच्छा, तुम जो वृन्दावन जाना चाहते हो, वहाँ क्या है? मैं तुम्हारे लिये यहीं वृन्दावन बना देता हूँ।'' रूप गोस्वामीजी ठहर गए। एक रात को मौसम बड़ा खराब हो गया। रास्ता, पथ-घाट सब पानी में डूब गया। रूप गोस्वामीजी उसी बुरे मौसम में बरसात में

जा रहे थे। वे जिस रास्ते से जा रहे थे, उसके एक किनारे एक झोपड़ी में एक वृद्ध खाने बैठे थे और उनकी स्त्री भोजन परोस रही थी। रूप गोस्वामी जी के पैरों की आवाज सुनकर स्वामी ने प्रश्न किया, ''इस बुरे मौसम में कौन जा रहा है?'' उत्तर में स्त्री बोली, ''कुत्ता होगा शायद !'' स्त्री का जवाब सुनकर वृद्ध ने कहा, ''हाय, इस बुरे मौसम में कुत्ता भी बाहर नहीं निकलेगा ! यह निश्चय ही कोई जमींदार के घर का नौकर होगा। यह बात रूप गोस्वामी जी के कान में पड़ी। वे सोचने लगे, कुत्ता भी जिस बुरे मौसम में बाहर नहीं निकलता, जमींदार के नौकर को उस बुरे मौसम में बाहर निकलना पड़ता है ! बस, सब छोड़कर चल पड़े, वृन्दावन।''

कर्म और पूजा साथ-साथ

मैं स्वामीजी का सेवक होकर उनके साथ जाना चाहता था। इस पर उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन की एक घटना बतलाई। पूजनीय ब्रह्मानन्द महाराज ने उनको दक्षिण भारत में पूजनीय शशि महाराज के पास भेजा था। किन्तु पूजनीय महाराज (विशुद्धानन्द जी) पूजनीय ब्रह्मानन्द जी के साथ रहकर उनकी सेवा करना चाह रहे थे। एक दिन पूजनीय कृष्णलाल महाराज के माध्यम से अपनी यह इच्छा पूजनीय ब्रह्मानन्द जी को बतलाई, तो वे पूजनीय महाराजजी (विशुद्धानन्द) को लक्ष्य करके बोले, ''देखो, एक भाई, एक मित्र के रूप मैं तुमसे कह रहा हूँ कि कर्म और पूजा साथ-साथ चलनी चाहिए।'' पूजनीय ब्रह्मानन्द जी की यह बात कहकर पूजनीय महाराज (विशुद्धानन्दजी) ने कहा, ''ये शब्द आज भी मेरे कानों में बजते हैं।'' पूजनीय महाराज (विशुद्धानन्दजी) जब बेलूड़ में रहते थे, तब प्रतिदिन सन्ध्या आरती के बाद उनके पास जाता था। प्रतिदिन उनके निर्देशानुसार पूजनीय महाराज जी के सेवक मुझको फल, मिष्टान्न जो रहता, खाने को देते। इसीलिए बात समाप्त होने के बाद पूजनीय महाराज ने मुझसे कहा, ''देख, कुछ मिलता है कि नहीं?'' मैंने कहा, ''अच्छा, जाता हूँ।''

मेरी बात सुनकर पूजनीय महाराज बोले, ''मिलने पर जैसा आनन्द होता है, जिस दिन कुछ न मिले, उस दिन भी वैसा आनन्द रहेगा तो !'' मैंने कहा, ''हाँ !'' इस पर महाराज जी ने कहा, ''यही तो योग है। पाने पर जैसा आनन्द, न पाने पर भी वैसा ही आनन्द !''

२२ जून, १९५४

तुम्हारा बड़प्पन

आज रात को महाराज जी के पास बैठा था। उसी समय सुबोधबाबू आकर महाराजजी को प्रणाम करके बैठे। सुबोधबाबू मठ का बाजार करते हैं और प्राय: प्रतिदिन रात को पूजनीय महाराज जी के पास आते हैं। पूजनीय महाराज उनको बहुत स्नेह करते हैं। सुबोधबाबू के प्रणाम करके बैठते ही पूजनीय महाराजजी ने प्रश्न किया, ''सुबोध, बाजार करने जाते हो, किसी दिन ठगे भी गए?''

उत्तर में सुबोधबाबू बोले, ''महाराज, आज ही ठगा गया।'' यह कहकर उन्होंने पूजनीय महाराजजी को बताया कि आज उनके अनजान में भारवाहक ने कैसे मछली चुरा ली और वे नहीं पकड़ पाए, मठ के दरवान ने कैसे उसको पकड़ लिया। सुनकर महाराजजी ने जानना चाहा कि चोर को क्या सजा दी गई? सुबोधबाबू बोले, ''महाराज ! खूब डाँटकर उसको छोड़ दिया।''

सुबोधबाबू की बात सुनकर पूजनीय महाराज जी ने उनसे कहा, ''यदि उसे मछली खाने को छह आना पैसा दे दिया होता, तो उससे तुम्हारा बड़प्पन प्रकट होता।'' यह बात कहकर पूजनीय महाराज ने मुझसे पवहारी बाबा की घटना बताने को कहा। मैंने घटना बताई।* बताने के बाद पूजनीय महाराज बोले, ''देखा, चोर का कैसा परिवर्तन हो गया। बाद में उसके साथ ऋषीकेश में स्वामीजी की भेंट हुई थी।''

आज पूजनीय महाराज जी के पास बैठने का सुयोग नहीं हुआ। इसलिए उनको प्रणाम करके बोला, ''महाराज, जाता हूँ।'' इस पर वे बोले, ''जाता हूँ ! बोलना, आता हूँ।''

(* एक रात पवहारी बाबा की गुहा में चोर घुसा था। उनकी गुहा में एक लोटा और एक कंबल ही रहता था। चोर वह दोनों लेकर भाग ही रहा था कि पवहारी बाबा को आहट मिली। इसीलिए चोर वह सब फेंककर भागने लगा। पवहारी बाबा भी चोर के पीछे लोटा-कंबल लिये दौड़ने लगे। अन्त में चोर को पकड़कर पवहारी बाबा बोले, ''भगवान, यह आपका लोटा, आपका कंबल, आप लेते जाइए।'' यह बात सुनकर चोर का मन बदल गया। वह सबकुछ छोड़कर ऋषीकेश में चला गया और तपस्या में जीवन बिताने लगा।)

२६ जून, १९५४

प्रातःकाल जगने का उपाय

आज पूजनीय महाराज जी की पदसेवा करते-करते मैंने कहा, ''महाराज, मैं किसी भी तरह भोर में नहीं उठ पा रहा हूँ। कोई उठा दे, तो उठ सकता हूँ, लेकिन कौन उठाएगा?''

मेरी बात सुनकर पूजनीय महाराज ने कहा, 'कोई कुछ नहीं करेगा। अपने आप के लिए अपने को ही करना होगा।'' फिर कहा, ''सोने से पहले तकिया पर एक-दो बार ४ लिखकर सो जाना। क्या होता है, मुझे बताना।'' महाराजजी द्वारा निर्देशित उपाय से मुझे अच्छा फल प्राप्त हुआ।

आज एकादशी है। सन्ध्या के बाद आश्रम में रामनाम संकीर्तन होगा। इसीलिए पूजनीय महाराजजी के पास बैठने का सुयोग नहीं मिलेगा। तो भी एक बार केवल प्रणाम करने गया था। बड़े प्रेम से कई सन्देश खिलाये। शरीर पर धोबी-घर का धुला कपड़ा देखकर बोले, ''यह तो सुन्दर हुआ है। फिर भी कपड़ा गन्दा पहने हो। अपने हाथ से कपड़ा धोकर इस्त्री कर लेना।''

२९ जून, १९५४

सब शास्त्रों का भाष्य

पूजनीय माधवानन्द महाराज ने एक ब्रह्मचारी से कहा था, ''श्रीरामकृष्ण-वचनामृत अच्छी तरह पढ़ना। पहले वचनामृत, फिर शास्त्र।'' ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, ''विशुद्धानन्द महाराज ने भी मुझसे यही कहा है।'' ब्रह्मचारी ने पूजनीय महाराज को पूजनीय माधवानन्द महाराज के साथ अपने इस कथनोपकथन की बात बताई, तो महाराजजी ने कहा, **''वेद-वेदान्त सब कुछ का भाष्य है श्रीरामकृष्ण-वचनामृत।** स्वामीजी भी तो यही कहते थे।''

आम बातों के क्रम में महाराज ने कहा, उन्होंने पचीस वर्ष मोराबादी आश्रम में बिताये हैं और दक्षिण भारत में १४-१५ वर्ष।

३० जून, १९५४

आज सन्ध्या आरती के बाद आश्रम में भजन हुआ। भजन के बाद पूजनीय विमुक्तानन्द जी के निर्देश पर मुझको श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ करना पड़ा। पाठ के बाद महाराजजी के पास गया था। उनसे वचनामृत पाठ की बात बताई, तो उन्होंने जानना चाहा – क्या पढ़ा। बताया कि नृसिंहजी श्रीभगवान प्रह्लाद का शरीर चाट रहे हैं, यही अंश पढ़ा, तो वे बोले, ''भक्ति के समान क्या और कोई वस्तु है?''

९ जुलाई, १९५४

आज रात पूजनीय महाराज जी के पास गया था। बातचीत के क्रम में एक व्यक्ति से उन्होंने कहा, ''ठाकुर से माँ बड़ी हैं।'' यह बात सुनकर मैंने कहा, ''नाग महाशय कहते थे, बाप से माँ अधिक दयालु हैं।'' सबके अन्त में महाराज जी बोले, ''मैं तो यही जानता हूँ, जो माँ हैं, ठाकुर भी वही हैं।''

पूजनीय महाराज जी के लिये आज एक नई तोसक बनकर आई है। उन्होंने दयापूर्वक अपनी व्यवहार की हुई पुरानी तोसक मुझे दे दी।

१० जुलाई, १९५४

रात को पूजनीय महाराज जी के कमरे में बैठकर उनकी पदसेवा कर रहा था। कवरेज महाशय, फणीबाबू और दो-एक अन्य भक्त उपस्थित थे। थोड़ी देर बाद रजतबाबू आकर महाराजजी को प्रणाम करके बैठे। कुशल-प्रश्न आदि के बाद रजतबाबू ने कहा, ''महाराज, मायेरबाड़ी से पूजनीय केष्टे महाराज की चिट्ठी आई है, वे तो आपको मद्रास ले जाने के लिए बहुत आग्रहशील हैं।''

उत्तर में महाराज जी बोले, ''हाँ कैलाशानन्द ने भी खूब जोर देकर लिखा है। फिर भी जानते हो, ७१ वर्ष की उम्र हुई, इस उम्र में क्या और घूमना-फिरना सम्भव है ! मद्रास में १४-१५ वर्ष था। वहाँ जाने पर सभी आश्रमों से साधु आकर खूंटा गाड़कर बैठ जाएँगे और कहेंगे, ''महाराज, आपको हमारे आश्रम में चलना ही होगा।'' यह बात कहकर पूजनीय महाराज ने मजा लेते हुए कहा, ''देखो, १० वर्ष पहले कोई बुलाता नहीं था, अब चारों ओर से आइए-आइए कर रहे हैं।''

महाराज जी की बात सुनकर मैंने कहा, ''महाराज, एक बार विमुक्तानन्द जी महाराज पूजनीय प्रेसिडेन्ट महाराज को दोपहर में खाने को निमन्त्रित करने आए थे। तब उन्होंने पूजनीय विमुक्तानन्द जी से कहा, ''देखो, जब खा सकता था, तब कोई खाने को नहीं कहता था। अब खा नहीं सकता, तो तुम सब लोग खाने को निमन्त्रित कर रहे हो।''

मेरी बात सुनकर पूजनीय महाराज ने कहा, ''तुम लोग

शेष भाग पृष्ठ ४७६ पर

रामराज्य का स्वरूप (७/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

सत्य के लिये अपने प्राणप्रिय पुत्र को, जिनके लिए उनके मन में इतनी प्रीति थी, इतना वात्सल्य था, इतनी ममता थी, उन राम का उन्होंने परित्याग कर दिया। इससे बढ़कर सत्य के लिए त्याग का कोई दृष्टान्त नहीं होगा। दशरथजी केवल सत्यनिष्ठ ही नहीं थे, उससे भी बड़ा मूल्य उन्होंने तब चुकाया, जब राम का परित्याग करने के बाद उन्होंने अपने प्राण का परित्याग कर दिया।

तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी। २/२६३/६

राम-प्रेम की रक्षा करने के लिये उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि राम के वियोग में जीवित रहना, यह प्रेम का अनादर है और उन्होंने अपने प्राण का परित्याग कर दिया। इस तरह से उन्होंने राम का भी परित्याग किया और प्राण का भी परित्याग किया। ऐसी दिव्य स्थिति में मैं यह घोषणा करता हूँ कि तुम्हारे पिता के समान महान कोई नहीं है।

गुरुजी तो बड़े चतुर हैं, भाषण कला के बड़े पण्डित हैं। उसके बाद वे धीरे-धीरे अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़े। पहले उन्होंने धर्म का वर्णन किया, धर्म के रूप का वर्णन किया, महाराज दशरथ के चरित्र में धार्मिकता की ओर ध्यान दिलाया, उनकी भावुकता की ओर ध्यान दिलाया, फिर भरत से यह कहा कि भरत, तुम्हारे सामने इस समय स्पष्ट मार्ग खुला हुआ है। तुम्हारे पिता की सत्य की रक्षा के लिए श्रीराम ने वन जाना स्वीकार कर लिया। भगवान राम ने भी पिताजी के सत्य को कितना महत्त्व दिया, इससे सिद्ध हो सकता है कि अगर वे चाहते, तो पिता के वचन को अस्वीकार करके अयोध्या में रह सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, अपितु श्रीराम ने पिताजी के सत्य की पुष्टि की अपने चरित्र के द्वारा। पर पिताजी की प्रतिज्ञा के दो भाग हैं। एक भाग श्रीराम के द्वारा पूरा कर दिया गया। उन जैसे महाराज ने जिस मर्यादा और एक महान परम्परा की स्थापना की और यदि तुम जैसे उनका पुत्र उसका पालन न करे, तो उससे बढ़कर दुख की कोई बात नहीं होगी। मैं चाहता हूँ कि तुम भी उसी मार्ग का अनुगमन करो। गुरु वशिष्ठ सावधान हैं, वे जानते हैं कि भरत को केवल कर्तव्य और धर्म की बात अच्छी नहीं लगेगी। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारे पिता के समान तुम्हारे लिये भी सामंजस्य का मार्ग खुला हुआ है। वह क्या है? उन्होंने कहा कि सत्य की रक्षा करने के लिए तुम सिंहासन पर बैठ जाओ और अयोध्या का राज्य स्वीकार कर लो। इससे धर्म और कर्तव्य-कर्म की रक्षा होगी। पर तुम्हारी भावना की रक्षा का मार्ग भी तो खुला हुआ है। क्या? बोले, पिताजी ने तुम्हें राज्य दे दिया, पर पिताजी ने राज्य देने के बाद यह तो नहीं कहा था, यह बाध्यता तो तुम्हारे साथ नहीं जोड़ दी कि इस राज्य को जीवन भर तुम्हीं चलाओगे। कोई वस्तु तुम्हें मिली है और तुम चाहो, तो वह वस्तु तुम किसी दूसरे को दे सकते हो। तो तुम ऐसा करो न, तुम चौदह वर्ष के लिये अयोध्या का राज्य स्वीकार कर लो और जब राघवेन्द्र चौदह वर्ष बाद वन से लौटकर आवें, तो तुम्हारी भावना की रक्षा के लिये यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है कि –

सौंपेहु राजु राम के आएँ।
सेवा करेहु सनेह सुभाएँ।। २/१७४/८

राम के लौटकर आने के बाद अयोध्या का राज्य उन्हें सौंप देना और जैसी तुम्हारी भावनाएँ हैं, तुम बड़े प्रेम से भगवान राम की सेवा करना। जिस प्रकार तुम्हारे पिता ने धर्म, कर्तव्य और भावना का सामंजस्य स्थापित किया, जो मार्ग प्रस्तुत किया, वही सामंजस्य तुम भी अपने चरित्र के द्वारा स्थापित करो।

गुरु वशिष्ठ का भाषण बड़ा युक्तियुक्त है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सचमुच उनके भाषण में कोई कमी निकालना बड़ा कठिन है। गुरु वशिष्ठ ने भाषण समाप्त किया और उसके बाद मंत्रियों ने उनके भाषण का समर्थन किया। पर गुरुदेव की दृष्टि केवल धर्मपरक है और मंत्रियों की दृष्टि राजनीतिपरक है। मंत्रियों ने बड़ी चतुराई से एक संशोधन जोड़ने की चेष्टा की। धर्म व्यक्ति को त्याग की प्रेरणा देता है, पर राजनीति में स्वार्थ का अपना एक महत्त्व है, इसलिए मंत्रियों ने सुना, तो उनको कुछ अटपटा लगा। मंत्रियों को लगा कि गुरुदेव ने यह मार्ग तो निकाला कि भरत अयोध्या का राज्य स्वीकार कर लें, पर इसके साथ यह कह देना कि चौदह वर्ष के बाद जब राम लौटकर आवें, तो राज्य लौटा देना, यह तो भरत के प्रति कोई बहुत अच्छा न्याय नहीं है। क्या पता, भरत यदि राज्य चलाना चाहते हों, राजा बने रहना चाहते हों और उनको बाध्य कर दिया जाये कि चौदह वर्ष के लिये राज्य चलाओ, तब तो भरत के लिए यह एक बड़ा बन्धन हो जायेगा। बड़ी बाध्यता हो जाएगी। मंत्रीगण श्रीभरत को उस दृष्टि से नहीं देख पाते, जिस दृष्टि से गुरु वशिष्ठ देख रहे हैं। गुरु वशिष्ठ को भरत के त्याग पर भरोसा है, पर मंत्रियों के मन में कहीं न कहीं आंशका है कि अच्छा श्रीभरत अभी राज्य स्वीकार नहीं कर रहे हैं, पर आग्रह करने पर स्वीकार करेंगे और एक बार जब व्यक्ति सत्ता का सुख भोग लेता है, तो उसे छोड़ना आसान थोड़े ही होता है। उसका दृष्टान्त तो बार-बार आते ही रहता है। एक बार व्यक्ति को राज्य का सत्ता का सुख मिल गया, तो चाहे वह पहले कभी कहता भी रहा हो कि इतने ही समय तक हम सत्ता में रहेंगे, पर उसे छोड़ना बड़ा कठिन है। इसलिये मंत्रियों ने बड़ी चतुराई भरी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने श्रीभरत से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज, अब तो आपके सामने और भी बड़ी बात हो गई। केवल पिताजी के आदेश की बात होती, तो आप उसके विपक्ष में सोच सकते थे, लेकिन अब तो गुरु वशिष्ठ ने भी अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के लिये कह दिया, तब तो ऐसी स्थिति में आपकी बाध्यता हो गई। श्रीराम की आज्ञा, पिता की आज्ञा, गुरु वशिष्ठ की आज्ञा और इतनी आज्ञाएँ जहाँ पर हैं, वहाँ पर उसे नकारने का प्रश्न ही कहाँ है? जहाँ तक गुरुजी ने कहा कि –

सौंपेहु राजु राम के आएँ।

इस विषय में उन्होंने बड़ी चतुराई से वह वाक्य जोड़ दिया –

कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि।। २/१७५/०

श्रीराम के आने के बाद तब जैसा उचित लगेगा, फिर आप दोनों भाई निर्णय कर लीजिएगा, आपकी कैसी इच्छा है, श्रीराम की कैसी इच्छा है। आप राज्य चलाना चाहें या न चलाना चाहें, श्रीराम यदि राज्य न लेना चाहें, तब भी तो ऐसी स्थिति आ सकती है कि आपको ही राज्य चलाना पड़े, इसलिए हम आपको किसी समय की सीमा में बाँधते नहीं, पर आप राज्य स्वीकार कर लीजिए और गुरुदेव की आज्ञा का पालन कीजिए। उसके पश्चात् अनुमोदन किया कौशल्या अम्बा ने। कौशल्या अम्बा गुरु वशिष्ठ के भाषण को बड़े ध्यान से सुन रहीं थी। मंत्रियों के समर्थन को भी उन्होंने सुना, पर भरत पर पड़नेवाली प्रतिक्रिया पर उनकी विशेष दृष्टि थी। वे भरत के भावुक हृदय से स्नेह भरे, प्रेम भरे हृदय से परिचित हैं और इसलिए उनको यह स्पष्ट लगा कि भरत को न तो गुरुदेव का भाषण प्रिय प्रतीत हुआ, न तो मंत्रियों की बात उनको आकृष्ट कर पाई, तब उन्होंने एक नई पद्धति से इन दोनों की बात का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि भरत, जब कोई व्यक्ति रोगी होता है और वैद्य को बुलाया जाता है, तो यह आवश्यक नहीं कि वैद्य रोगी को प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ ही दे। ऐसी वस्तु भी खाने के लिये वैद्य रोगी को बता सकता है, जो रोगी को प्रिय न हो। ऐसी कड़वी दवा भी दे सकता है, जो रोगी को प्रिय न हो। पर रोगी का यह कर्तव्य है कि वह वैद्य के आदेश को स्वीकार करे। इसी तरह अयोध्यावासी इस समय एक रोग से ग्रसित हैं। वह रोग कौन-सा है? कौशल्या अम्बा का संकेत था, रामायण में लिखा गया –

राम बियोग कुरोग बिगोए। २/१५७/७

अयोध्यावासी राम के वियोग के रोग से ग्रसित हैं। यदि राम के वियोग के कुरोग से ग्रस्त हैं, पीड़ित हैं और मन के सन्दर्भ में गुरु वशिष्ठ ही वैद्य हैं। गुरु वशिष्ठ तुमसे कहते हैं, तो वह भले ही तुम्हें प्रिय न लगे, पर उसे पथ्य समझकर गुरुदेव की बातों को स्वीकार करना चाहिए।

कौसल्या धरि धीरजु कहई।
पूत पथ्य गुर आयसु अहई।। २/१७५/१

इस तरह से एक सुनियोजित क्रम से गुरु वशिष्ठ का, मंत्रियों का और माताओं का अन्तरंग, बहिरंग, सभी पक्षों का सामंजस्य करते हुए श्रीभरत से राज्य लेने का आग्रह किया गया।

इसके पश्चात् श्रीभरत बोलने के लिए खड़े होते हैं। तब गोस्वामीजी ने एक नई बात लिखी। क्या? भाषण सुनकर श्रोता को प्रभावित होते हुए तो देखा जाता है, पर भाषण सुनने से पहले ही श्रोता वक्ता से प्रभावित हो जाए, ऐसा तो दृष्टान्त नहीं मिलता। लेकिन गोस्वामीजी ने कहा कि भरतजी ने वाणी से भाषण बाद में दिया, आँखों से भाषण पहले दिया और वह आँखों का भाषण इतना प्रभावशाली था कि भाषण को देखकर सारी सभा देहभाव से बिल्कुल ऊपर उठ गई।

अब गोस्वामीजी ने यहीं से सूत्र प्रारम्भ कर दिया। गुरु वशिष्ठ का भाषण बौद्धिक है और वह देह की सीमा के सन्दर्भ में सत्य है। पर अयोध्या में जो सारा अनर्थ हुआ है, वह देह के सन्दर्भ को लेकर ही तो हुआ है। अगर कैकेयीजी के सन्दर्भ में देखें, तो कैकेयीजी से दो नाते हैं। एक नाता भावना का है और दूसरा नाता शरीर का है। राम से जो उनका नाता है, वह भाव का नाता है और भरत से उनका जो नाता है, वह शरीर का नाता है। तो शरीर के नाते का अधिक महत्त्व है कि भाव के नाते का अधिक महत्त्व है? इस विषय में तो संसार में शत-प्रतिशत व्यक्ति शरीर के नाते को ही सत्य मानते हैं और भावना के नाते को कल्पित मानते हैं। सर्वत्र शरीर का ही तो बोल-बाला है। सर्वत्र शरीर को ही तो महत्त्व दिया जाता है। किन्तु भक्ति के सन्दर्भ में विचार करके देखें, तो शरीर के नाते का महत्त्व अगर धर्म की दृष्टि से है, तो भक्ति की दृष्टि से भावना के नाते का महत्त्व है। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर के नाते की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। शरीर के नाते का अपना महत्त्व है। शरीर के नाते में जो कर्तव्य है, उन कर्तव्यों का निर्वाह है। लेकिन शरीर और भावना के नाते में एक अन्तर है। शरीर के नाते में बाध्यता है और भावना के नाते में स्वतन्त्रा है। शरीर का चुनाव करने के लिए कोई पिता या पुत्र स्वतन्त्रता नहीं है कि पिता कैसा हो या पुत्र कैसा हो। पर भावना की दृष्टि से अगर कोई किसी को पुत्र मानना चाहे, तो वह स्वतन्त्र है कि वह जिसको चाहे, उसको अपना पुत्र माने। भावना और भक्तिशास्त्र का तो सारा सन्दर्भ ही शरीर से ऊपर उठकर भावना से जुड़ा हुआ है। यही सन्दर्भ आपको रामायण में मिलेगा। इसीलिए दोनों ही प्रकार के नातों का निर्वाह है। शरीर के सन्दर्भ से अगर कौशल्याजी जुड़ी हुई हैं, तो भावना के सन्दर्भ से शबरी जुड़ी हुई हैं। भगवान श्रीराघवेन्द्र शरीर से जुड़े सम्बन्ध का भी निर्वाह करते हैं –

प्रात काल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा।। १/२०४/७

जो शरीर के सन्दर्भ से जुड़े हुए हैं, उनके प्रति भी भगवान कर्तव्य-कर्म का निर्वाह करते हैं। पर मातृत्व का अद्‌भुत सुख, जब वे शबरीजी को माँ के रूप में स्वीकार करते हैं, तो वह मातृत्व शरीर से नहीं भावना से जुड़ा हुआ है। कौशल्या अम्बा और अन्य माताओं में अन्तर यही है कि कौशल्याजी के नाते में शरीर की प्रमुखता नहीं है, सुमित्राजी के नाते में भावना की प्रमुखता है और कैकेयीजी के नाते में शरीर की प्रमुखता है और यह स्वाभाविक है। कैकेयीजी क्रिया हैं और क्रिया में शरीर की प्रमुखता होती है। इसलिए यदि क्रियापरायण व्यक्ति शरीर को अधिक महत्त्व दे, तो यह उसके लिए स्वाभाविक है। **(क्रमशः)**

भले घर की स्त्रियों को देखते समय लगता है कि मेरी सच्चिदानन्दमयी माँ घूँघट काढ़े सती सजी हुई हैं; फिर जब मछुआ बाजार की वेश्याओं को निर्लज्ज की तरह सज-धजकर बरामदे में खड़े-खड़े हुक्का पीते हुए देखता हूँ, तब भी यही लगता है कि सच्चिदानन्दमयी माँ ही वेश्या बनकर और एक किस्म का खेल खेल रही हैं।

क्या देखा था जानते हो? ईश्वरीय रूप था। भगवती की मूर्ति थी, पेट में बच्चा था। उसे बाहर निकालती फिर निगल लेती। जितना भाग उसके भीतर प्रवेश करता, उतना शून्य बन जाता। मुझे दिखा दिया कि सब शून्य है। मानो कह रही हो, छू मन्तर, जादू जन्तर !

– श्रीरामकृष्ण देव

गीतातत्त्व-चिन्तन (८)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान भौतिक और आध्यात्मिक धर्मों के रक्षक

भगवान को अर्जुन ने शाश्वत धर्म का रक्षक बताया। शाश्वत धर्म दो धरातलों पर प्रकट होता है। एक भौतिक धरातल, जहाँ पर इन्द्रियों के सहारे ये धर्म दिखाई देते हैं। धर्म का अर्थ है – संसार में व्याप्त नियम। जो धारण करता है, टूटने नहीं देता, जिसके बल पर यह सारा का सारा संसार टिका है। भौतिक धरातल पर प्रकट होनेवाले धर्म को विज्ञान का नियम कहते हैं। दूसरा है मन का धरातल। उस धरातल पर जो धर्म प्रकट होता है, वह है अध्यात्म का नियम। इन धर्मों के रक्षक हैं भगवान, जो इन्हें टूटने नहीं देते। चन्द्रमा पर जाने से पहले वैज्ञानिकों ने सटीक गणना के द्वारा भौतिक जगत् के नियमों को जान लिया, अन्तरिक्ष के नियमों को भी जान लिया और उन नियमों को जान लेने के बाद नियमों पर वे सवार हो गए। किस नियम को जान लेने के बाद हम उस पर सवार हो जाते हैं? मशीन को जब तक हम नहीं जानते, तब तक मशीन हमको चलाती है। मशीन के नियम जान लेने के बाद हम उसे चलाते हैं।

जब नियम का ज्ञान होता है, तब शक्ति आती है। हममें बल आता है और हम उस नियम को चलाने लगते हैं। नियम को जो बदलने नहीं देता, नियम को जो वैसा ही बनाकर रखता है, नियम में जो व्यतिक्रम नहीं आने देता, ऐसा जो तत्त्व है, वह तुम्हीं हो प्रभु ! तुम्हीं धर्मरक्षक हो। जैसे मनुष्य का स्वभाव, मानव-मन की प्रवृत्तियाँ, आध्यात्मिक-जगत् के नियम, भौतिक-जगत् के नियम, इन्हें भगवान बदलने नहीं देते। अब जैसे मुझे आध्यात्मिक-जगत् के कुछ नियम मालूम हुए और मैं साधना करने लगा, अपने मन को धीरे-धीरे ऊपर ले जाने की कोशिश करने लगा। जिस तरह पानी का बहाव सदा नीचे की ओर ही जाता है, उसी प्रकार यह मन भी है। मन पर से पकड़ ढीली हुई नहीं कि वह नीचे की ओर जाना आरम्भ कर देता है। यह नियम जान लेने के बाद कि पानी अपने स्वभाव के अनुसार नीचे की ओर ही जाता है, पम्प लगाकर उसे ऊर्ध्वगामी बना देते हैं। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म-जगत् के इस नियम को कि मन नीचे की ओर ही जाता है, यह जानकर उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करते हैं, ऊपर उठाते हैं। अब यदि नियम ही बदल जाएँ, तो साधक की साधना सिद्ध ही नहीं होगी। कोई वैज्ञानिक भी अपने काम में सफल नहीं होगा। अत: जो इन नियमों में कभी व्यतिक्रम नहीं आने देता, उसको धर्मवेत्ता कहते हैं। शाश्वत धर्मवेत्ता, धर्म के रक्षक हैं भगवान।

जो पहले जैसा था, वैसा ही अब भी है। जिसमें किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, उसे कहते हैं सनातन। प्रभु ! जैसे प्रारम्भ में आप रहे होंगे, वैसे ही अब भी हैं। आपमें किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आप अक्षर और अव्यय हैं। इसीलिए प्रभो ! आप ही सनातन पुरुष हैं, यह मेरा मत है, ऐसी प्रार्थना करते हुए अर्जुन कहता है –

भगवान का उग्र रूप

क्या भगवान का उग्र रूप तीनों लोकों ने देखा?

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य–
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

त्वाम् (आपको) अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम् (आदि, मध्य, अन्त से रहित, अनन्तसामर्थ्यवान) अनन्तबाहुम् शशिसूर्यनेत्रम् (अनन्तभुजावाले, चन्द्रसूर्यरूप नेत्रोंवाले) दीप्तहुताशवक्त्रम् स्वतेजसा इदम् विश्वम् (अग्निरूप मुख वाले, अपने तेज से इस जगत को) तपन्तम् पश्यामि (संतप्त करते देखता हूँ) महात्मन् (हे महात्मन् !) इदम् द्यावापृथिव्योः अन्तरम् (यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का आकाश) च सर्वाः दिशः एकेन त्वया हि (तथा सभी दिशाएँ एक आपसे ही) व्याप्तम् तव इदम् (व्याप्त हैं, आपके इस) अद्भुतम् उग्रम् रूपम् दृष्ट्वा (अलौकिक भयंकर रूप को देखकर) लोकत्रयम् प्रव्यथितम् (तीनों लोक व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं)।

"आपको आदि, मध्य, अन्त से रहित, अनन्तसामर्थ्यवान, अनन्तभुजावाले, चन्द्रसूर्यरूप नेत्रोंवाले, अग्निरूप मुखवाले, अपने तेज से इस जगत को संतप्त करते देखता हूँ।"

"हे महात्मन् ! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का आकाश तथा सभी दिशाएँ एक आपसे ही व्याप्त हैं। आपके इस अलौकिक भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।"

अर्जुन कहता है – हे महाबाहो ! आपके इस रूप को देखकर तीनों लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ। इस बात से यह नहीं समझ में आता कि अर्जुन का दर्शन किस प्रकार का है। कल्पना करें – कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि पर दोनों ओर सेनाएँ खड़ी हैं। भगवान के विराट्रूप का दर्शन एक तो अर्जुन को होता है और दूसरा संजय है, जो प्रभु के इस विराट्रूप का दर्शन करता है। अर्जुन भगवान से कह रहा है कि आपको देखकर तीनों लोक व्यथित हो रहे हैं। परन्तु वहाँ पर जो कौरव सेना और पाण्डव सेना है, उसके लोग तो बिना विचलित हुए वैसे ही खड़े हैं। बस केवल यही चिन्ता कर रहे होंगे कि युद्ध के समय में सेनाओं के बीच में खड़े होकर कृष्ण और अर्जुन क्या बातें कर रहे हैं। तीनों लोकों के व्यथित होने का अर्थ टीकाकारों ने यह किया है कि भगवान के दिव्य विराट्रूप के दर्शन करते हुए अर्जुन देख रहा है कि वहाँ पर कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि है। उस भूमि पर दोनों ओर की सेनाएँ भी सजी हुई हैं। सेनाओं के मध्य में उसका रथ खड़ा है और उस जगह पर खड़ा हुआ अर्जुन स्वयं को भगवान का दिव्य रूप देखते हुए भी उसी विराट्रूप में देख रहा है। यह सब देखकर या तो अर्जुन स्वयं घबरा रहा है, इसलिए उसको प्रतीत हो रहा है कि तीनों लोकों के सब लोग भी घबराए हुए हैं। मनुष्य की अपनी वृत्ति जैसी होती है, वैसा ही उसे बाहरी संसार दिखाई पड़ता है।

महाराष्ट्र के स्वामी रामदास रामायण रचकर उसकी कथा सुनाते थे। उस कथा में स्वयं हनुमानजी भी साधारण वेश में रहते थे। कथा में आया कि अशोकवाटिका में हनुमानजी ने सफेद फूल देखे। सुनकर हनुमानजी कथाकार से उलझ गए कि फूल तो लाल थे। अन्त में रामजी को मध्यस्थ बनकर बताना पड़ा कि फूल तो सफेद ही थे, पर उस समय अतिशय क्रोध से आँखें लाल रहने के कारण वे फूल हनुमानजी को लाल दिखाई दिए। इसी तरह से यहाँ पर स्वयं घबराए हुए होने के कारण अर्जुन को लग रहा है कि भगवान के अद्भुत और उग्र रूप को देखकर सारी दिशाएँ व्यथित हो गई हैं।

अभी तक के श्लोकों में तो भगवान के उस दिव्यरूप का अद्भुत होना ही प्रकट हुआ था। अब इससे आगे उनके उग्ररूप का वर्णन आता है।

भगवान के शरीर में अर्जुन देखता है कि तीनों लोकों के लोग व्यथित होकर भाग रहे हैं। उस विराट्रूप में अपने आप को भी देखा, तीनों लोकों के व्यथित लोगों को भी देखा। विभिन्न आकृतियाँ देखीं। नाना वर्ण देखे। देवता, मनुष्य आदि नाना जातियाँ देखीं। इन सबको जो देखा, सो ये तो भगवान में ही नित्य-निवास करते हैं। अभी जब भगवान अपना विराट्रूप दिखा रहे हैं, बस, उसी समय के लिए ये सब भगवान के भीतर हैं, ऐसी बात तो है नहीं। तो क्या वे नित्य ही इसी प्रकार घबराए हुए रहते हैं? और यदि नित्य घबराए हुए नहीं रहते, तो इस समय क्यों घबराए हुए हैं? व्याख्याकार समझाते हैं कि इस समय का भगवान का रूप एक विशेष रूप है। काल का रूप है ! काल का, वह भगवान का महासंहारक दिव्य रूप है। काल से, संहार

से कौन नहीं डरता! यही कारण है कि त्रिलोक भी भयभीत है। तीनों लोकों के लोग घबराए हुए हैं।

भगवान के उग्ररूप को देखने वाले देवतागण

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।२१।।
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।२२।।

अमी (वे) सुरसंघा हि त्वाम् विशन्ति (आपमें प्रवेश कर रहे हैं) केचित् भीताः (कुछ भयभीत होकर) प्राञ्जलयः गृणन्ति (अंजलि बाँधकर आपकी स्तुति कर रहे हैं) महर्षिसिद्धसंघाः स्वस्ति इति उक्त्वा (महर्षि और सिद्धगण स्वस्तिवाचन कर रहे हैं) पुष्कलाभिः स्तुतिभिः त्वाम् स्तुवन्ति (वे उतम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं) ये (ये) रुद्रादित्या च वसवः साध्याः (रुद्र और आदित्य तथा वसु, साध्यगण) विश्वे अश्विनौ च मरुतः च उष्मपाः (विश्वदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और पितरगण) च गन्धर्वयक्षासुर सिद्धसंघाः सर्वे एव (तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगण सभी) विस्मिताः त्वाम् वीक्षन्ते (विस्मित होकर आपको ही देखते हैं)।

''वे देवतागण आपमें प्रवेश कर रहे हैं, कुछ भयभीत होकर अंजलि बाँधकर आपकी स्तुति कर रहे हैं, महर्षि और सिद्धगण स्वस्तिवाचन कर रहे हैं, वे उतम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।''

''ये रुद्र और आदित्य तथा वसु, साध्यगण, विश्वदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और पितरगण तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगण सभी विस्मित होकर आपको ही देखते हैं।''

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति – यहाँ पर कुछ व्याख्याकारों ने कहा कि देवतागण ही भूमि के भार को ढोने के लिए राजा के रूप में अवतीर्ण होते हैं। कुछ देशों में यह मान्यता अब तक प्रचलित है। जापान में भी कुछ साल पहले तक यही बात मानी जाती थी कि राजा देवता का रूप होता है। देवता ही प्रजा का पालन करने के लिए और पृथ्वी का भार हरण करने के लिए राजा के रूप में अवतीर्ण होता है। इसीलिए यहाँ कहा सुरसंघा। ये जितने राजा हैं, ये सब पहले देवता ही थे और ये राजा युद्ध में हत होकर पुनः देवयोनि को प्राप्त करके आपके अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर आपके गुणों का गायन कर रहे हैं। आपका नाम ले रहे हैं। महर्षि और सिद्धगण जो आपके अन्दर हैं, वे आगे होनेवाले उत्पात की सूचना पाकर मानो उत्पात की शान्ति के लिए स्वस्ति-वाचन कर रहे हैं। कई प्रकार के स्तोत्रों के द्वारा आपको शान्त करने के लिए आपकी स्तुति कर रहे हैं। एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, वसु, साध्य देवता, विश्वदेव, दोनों अश्विनीकुमार, उनचास मरुत्, उष्मपा अर्थात् पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध ये सब अत्यन्त विस्मित होकर आपके इस उग्र रूप को देख रहे हैं। **(क्रमशः)**

एक ऋणग्रस्त व्यक्ति ने अपने साहूकार से बचने के लिए पागल का स्वाँग रचा था। डॉक्टर, वैद्य कोई उसे सुधार नहीं पा रहे थे। उसका पागलपन बढ़ता ही जा रहा था। अन्त में एक अनुभवी वैद्य ने बीमारी का सच्चा कारण ताड़ लिया और उसे डाँटते हुए कहा, ''महाशय, यह आप क्या कर रहे हैं ! सावधान हो जाइए, कहीं पागल की नकल करते-करते आप सचमुच ही पागल न बन जाएँ। इस थोड़े ही समय के अन्दर आपके दिमाग में कुछ-कुछ सही गड़बड़ी के लक्षण भी दिखाई देने लगे है।'' यह सुनकर वह व्यक्ति होश में आया और उसने पागलपन का ढोंग करना छोड़ दिया। सदा किसी भाव की नकल करते रहने से मनुष्य धीरे-धीरे वास्तव में उसी भाव को प्राप्त हो जाता है।

हृदय के भीतर भक्तिभाव रखो, कपट चतुराई छोड़ दो। जो सांसारिक कर्म करते हैं, दफ्तर में काम या व्यापार करते हैं, उन्हें भी सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सच बोलना कलियुग की तपस्या है।

– श्रीरामकृष्ण देव

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२०)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

गीता-पाठ हो रहा है – स्वधर्म का प्रसंग उठा।

महाराज – हमलोग इसको इस प्रकार समझ सकते हैं – संन्यासी हजारों असुविधाएँ होने पर भी किसी भी स्थिति में गृहस्थ की तरह अपना चाल-चलन नहीं करेगा।

गीता में देखते हो न – एक ही बात। बारम्बार आकर वही एक बात कहते हैं। किस प्रकार जानते हो? एक बार ऊपर से लालटेन लेकर आते हुए हमसे अपना अनुसरण करने को कहते हैं, कहकर फिर ऊपर चले जाते हैं। कुछ दूर आकर देखते हैं कि तुम अनुसरण नहीं कर रहे हो, तब फिर से नीचे उतर कर बलपूर्वक अनुसरण हेतु कहते हैं। इसी तरह से चढ़ना-उतरना करते हैं।

रोग घटने-बढ़ने पर जैसे अनुपान बदल दिया जाता है। एक ही दवा मकरध्वज को कभी अदरक, कभी पिप्पल, तो कभी चावल के धोवन के साथ देते हैं, वैसे ही शंकराचार्य आकर ज्ञान और चैतन्यदेव प्रेम देते हैं। 'मन ! कहता हूँ, काली को भजो।' कैसा अद्‌भुत गान है ! अहा ! माँ की बात है। गीता की ब्रह्मविद्या की, उपनिषद् की सार बात यहाँ है। कहते हैं – बेचैन मत होओ, शान्त-स्थिर होकर रहो, जहाँ हो वहीं से भगवान को लेकर मतवाले हो जाओ। स्वामीजी ने भी तो इस बार इसी बात को साकार किया है। ठाकुर की कृपा से हम समझ गए हैं, यही बात है। चलना ही होगा। इस संसार में जो रुकेगा, वही मार खाएगा।

१. माँ और स्वामीजी के भीतर ठाकुर हैं – बाहर वे लोग स्वयं हैं। माँ = विष्णुप्रिया+सीता।

२. तुम्हारा वंश भक्त-वंश है। वंश क्या कम है ! ठाकुर भक्तवंश को प्रणाम करते थे। अतः भक्ति नहीं होने की क्या बात है? माँ-बाप ने बचपन से ही, जन्म से ही पहरा दिया है, छः वर्षों तक एक साथ। संस्कार या भक्ति नहीं होने की क्या बात है?

तुम परब्रह्म के पौत्र हो। बीच में एक सोपान मात्र का अन्तर है।

३. चैतन्यदेव के भक्तगण प्रबल यम-नियमशील थे। रघुनाथ की जीवनशैली मानो पत्थर की लकीर थी।

४. ठीक-ठीक ब्रह्मचारी होने पर साधु-जीवन बड़ा मधुर हो जाता है। चैतन्यदेव के भक्तगण ठीक-ठीक ब्रह्मचारी थे। वे सभी लोग जापक थे। विष्णुप्रिया ने एक स्थान पर बैठे रहकर ही अपने विचार-स्पन्दन को विश्वभर में फैला दिया है।

२५-०८-१९६४

दोपहर में महाराज बहुत प्रफुल्लित थे। ठीक एक सुकुमार बालक की तरह। दिनभर सहास्य मुख ! आत्यन्तिक आत्मसमर्पण-भाव ! अपने कष्ट का भी ध्यान नहीं, सब कुछ तुमलोग जानो। दोपहर में भोजन के पहले उन्होंने 'अरूप सायरे...;' भजन गाया। ध्यान में बैठे हुए मैंने सुना। सुनील महाराज ने ही उनसे आग्रह कर गवाया था।

२६-०८-१९६४

प्रातःकाल महाराज बहुत ही गम्भीर थे। दोपहर में भी वैसे ही गीतापाठ प्रथम अध्याय से आरम्भ हुआ।

महाराज – प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक शब्द उसके अर्थ और अन्वय को, टीका-भाष्य नहीं, इस तरह पढ़ो, जिससे उस श्लोक को देखते ही अर्थ समझ में आ जाय। फिर एक बार अन्तिम रूप से पढ़ो, तदुपरान्त केवल दुहराओ।

मनुष्य के चार कोशों का विकास नहीं होने पर मनुष्य भोग ही कर सकता है, मुक्ति की तो बात ही नहीं है। अच्छी खाद्य वस्तु क्या है, कितना खाना चाहिए, इसे नहीं जानने से अधिक खाकर सम्भवतः वह पेट में रोग उत्पन्न कर देगा।

श्रीम ने कहा है – एक व्यक्ति के प्रसाद नहीं ग्रहण करने पर ठाकुर उस पर नाराज हो गए थे।

कुछ बातें बता रहा हूँ, इन्हें लिखकर रखो।

(क) स्थूल शरीर में देह और प्राण है तथा सूक्ष्म शरीर में बुद्धि और मन है। ये सब एक साथ मिलकर ही सभी कार्य करते हैं।

(ख) मृत्यु के समय स्थूल देह पड़ा रहता है, सूक्ष्म देह जीव के साथ रहता है। पेड़ के बीज को देखकर ही सभी जीवों की जन्म-प्रक्रिया समझी जा सकती है। मिट्टी में किसी तरह का बीज बोने पर ध्यान देने पर सब समझ में आएगा।

(ग) बच्चों के मन में उनके द्वारा देखे गए विषयों के चिन्तन के अतिरिक्त अन्य विचार नहीं उठते।

(घ) ईश्वर ने सभी जीवों को पृथक् करके रखा है, इसीलिए किसी एक की मुक्ति होने पर सबकी मुक्ति नहीं होती। एक मैं (अहंकार) ही मृत्यु के समय सुप्त रहता है, फिर जन्म लेते समय वही जाग उठता है।

२८-०८-१९६४

महाराज आज से सुबह ५ बजे नाश्ता करके साढ़े पाँच बजे भ्रमण करने गए हैं। प्रात: श्रीकृष्ण की कथा और दोपहर में गीता तथा अपरेश मुखोपाध्याय के 'श्रीकृष्ण' नामक नाटक का पाठ होता है।

महाराज – मुझे लगता है कि अवतार-पुरुषों के जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को साधारण लोग कुछ भी समझ नहीं सकते। किन्तु वे मनुष्य होकर आते हैं और मनुष्यों के दुखों से व्यथित होते हैं और धीरे-धीरे उनका उद्धार करते हैं। इसी पक्ष को मनुष्य समझ सकता है, इसी पक्ष से ही अवतारी पुरुषों को पहचानना सहज होता है। ठाकुर का शरीर-महाभाव में दग्ध हो जाता था, ऐसा कहने से हम यही समझेंगे कि शायद उनके रोम जल गए थे।

यह नाटक मुझे बहुत अच्छा लगता है। दृश्य आदि को छोड़कर मैं कृष्ण भगवान की बातें तो सुनता हूँ। घर (पूर्वाश्रम) में माँ के कीर्तन का दल था। वे लोग नृत्य करते हुए गाते थे। घर में गोविन्दजी के साथ सम्बन्ध तो था ही, इसीलिए कृष्ण भगवान की कथा सुनकर उन्मत्त हो उठता हूँ।

२९-०८-१९६४

प्रात:काल भ्रमण करते हुए लोहे के बीम (खम्भे) को देखकर महाराज ने कहा, ''यह सब लोहा-लक्कड़ मुझे नहीं अच्छा लगता। यह सब बड़प्पन और शौक का काम है। ये सब रजोगुण के कार्य हैं। रजोगुणी चीजें पाने में कष्ट होता है, उन्हें भोग करते समय सुख मिलता है, किन्तु भोग-वस्तु का अभाव होने पर फिर कष्ट मिलता है। तमोगुणी तो समझता ही नहीं। सत्त्वगुणी खतरनाक और बड़ा संवेदनशील होता है। इसीलिये वह भोग करके सुख नहीं पाता। 'संन्यासी का गीत' का पाठ हुआ। प्रात:काल और दोपहर में 'श्रीकृष्ण' नाटक का पाठ हुआ।

विगत तीन वर्षों से शरीर की अस्वस्थता के कारण महाराज की उँगलियाँ अकड़ जाती थीं। जिसके परिणामस्वरूप उनके द्वारा पत्र लिख पाना सम्भव नहीं था। उस समय उनका जो कुछ लेखन प्राप्त होता है, उसे वे मुख से बोलते जाते थे और कोई उसे लिख लेता था। उनके हाथ की स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि वे अपना हस्ताक्षर भी नहीं कर सकते थे। तब सेवक को ही कलम से हस्ताक्षर में 'प्रेमेशानन्द' लिखना पड़ता था। १९६४ ई. के मध्य में उनके उस हाथ को सक्रिय बनाने का प्रयास किया गया, यह बात पहले कही जा चुकी है। इसके परिणामस्वरूप दिनांक २८-०८-६४ से वे जो पत्र लिखते थे, उस पर सेवक के प्रयत्नों से किसी तरह अपना हस्ताक्षर करते थे।

श्रीरामकृष्ण

वाराणसी

२८-०८-६४

प्रिय विष्णु,

श्रीमान अब्जजानन्द के पत्र से मुझे यह अवगत हुआ कि शिलाँग के स्वामियों ने 'आत्मविकास' को छपवाने की अनुमति उन्हें दी है। इस बारे में तुम लोगों को अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आशा करता हूँ कि तुम्हारा शरीर और कामकाज सुचारू ढंग से चल रहा होगा। तुम्हारे छात्रों ने अमेरिका के चित्र और पत्र को देखा है तो? इसकी प्रतिक्रिया जानने हेतु हम सभी बड़े उत्सुक हैं।

हम सभी पूर्ववत् हैं। मेरा स्नेह-शुभेच्छा जानना।

इति

शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

(क्रमश:)

साधुओं के पावन प्रसंग (४६)

स्वामी अपूर्वानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९५९ ई. में दुर्गापूजा के पहले मैं काशी अद्वैत आश्रम में कई दिन था। स्वामी अपूर्वानन्द (१९००-१९९०) उस समय इस आश्रम के अध्यक्ष थे। छात्र जीवन में मैं उनके द्वारा सम्पादित 'शिवानन्द स्मृति संग्रह' (तीन खण्डों में) पढ़कर बहुत प्रभावित हुआ था। वे प्रतिदिन प्रात: ठाकुर भोग के लिए बरामदे में बैठकर सब्जी काटते थे और सन्ध्या समय आरती गाते थे। वे श्रीमाँ के शिष्य थे और महापुरुष महाराज के सेवक थे। उन्होंने ठाकुर के पार्षदों की अनेक स्मृति संग्रह करके प्रकाशित किया है। वे कई ग्रन्थों के लेखक थे।

स्वामी अपूर्वानन्द

महाराज मुझे बहुत प्रेम करते थे। अमेरिका से जितनी बार मैं काशी गया हूँ, उतनी बार वे आरती के पश्चात् मुझसे भक्तों को कुछ कहने के लिए अनुरोध करते थे।

२८/०८/१९८२, अद्वैत आश्रम, काशी

मैंने दीक्षा के सम्बन्ध में उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा, ''ठाकुर ने श्रीमाँ को चार सिद्ध-मन्त्र दिया था। वही परम्परा के रूप में चला आ रहा है। विरजानन्दजी को वह सब श्रीमाँ से प्राप्त हुआ था और उन्होंने लिखकर रखा था।

''श्रीमाँ दीक्षा के समय अनेक लोगों को इष्ट-दर्शन करवा दी हैं – 'वह देखो तुम्हारे इष्ट।'

'श्रीमाँ अपने को गुरु कहकर नहीं बताती थीं। कहतीं, 'ठाकुर ही गुरु हैं।'

''दीक्षा के सम्बन्ध में श्रीमाँ का कोई विशेष आचार या नियम नहीं था।

''महापुरुष महाराज ठाकुर का स्थूलभाव से दर्शन करते थे। मठ में दो दिन उनको दर्शन नहीं हुआ – (१) जिस दिन बेलूड़ मठ के गोशाला में आग लगी थी और (२) जिस दिन आँगन में चोरकाँटा (एक प्रकार का घास) था।

''महापुरुष महाराज ने एक दिन मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कमरे से बाहर निकलकर पूर्व बरामदे में खड़े होकर कहा, 'यह देहमुक्त है। जो इसे देखेगा वह मुक्त हो जायेगा।' ''

स्वामी अपूर्वानन्द जी महाराज का पूर्वाश्रम पूर्वबंग के नोआखाली जिला में था। वे १९१८ ई. में बेलूड़ मठ में आये और महापुरुष महाराज का दर्शन किया। तदुपरान्त उन्होंने बलराम मन्दिर में राजा महाराज और स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज का दर्शन किया तथा उद्बोधन में स्वामी सारदानन्द जी महाराज एवं श्रीमाँ का दर्शन किया। १९१९ ई. में वे संघ में सम्मिलित हो गये तथा बाँकुड़ा में दुर्भिक्ष सेवाकार्य करने के लिए गये। वहाँ से जयरामवाटी जाकर उन्होंने श्रीमाँ से दीक्षा प्राप्त किया। उन्होंने अपनी मातृस्मृति ३ अक्तूबर, १९८६ को विस्तृत रूप से कहा, जिसको मैंने टेप कर लिया। उनकी मातृस्मृति (बांगला) 'शतरूपे सारदा' और 'श्रीश्रीमायेर पदप्रान्ते' (प्रथम खण्ड) पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुकी है। इसीलिए यहाँ पर पुनरुक्ति नहीं कर रहा हूँ। फिर भी कई विशेष घटनाओं का यहाँ पर उल्लेख कर रहा हूँ।

श्रीमाँ ने पालकी में बैठकर काशी सेवाश्रम का परिदर्शन किया और केदारबाबा (स्वामी अचलानन्द) ने मार्गदर्शक

होकर उनको सब दिखलाया। श्रीमाँ को पैदल चलने में कष्ट होगा, यह सोचकर राजा महाराज ने ऐसी व्यवस्था की थी। श्रीमाँ देखकर और सुनकर आनन्द प्रकट करती हुई बोलीं, ''यहाँ पर ठाकुर स्वयं विराजमान हैं और माँ लक्ष्मी पूर्णरूप से अवस्थित हैं।'' तदुपरान्त श्रीमाँ ने लक्ष्मी-निवास में वापस आकर दस रुपये का नोट चारुबाबू (परवर्तीकाल में स्वामी शुभानन्द) के हाथों भेज दिया। श्रीमाँ द्वारा दिया हुआ वह नोट अभी भी सेवाश्रम में सुरक्षित रखा हुआ है।

१९१२ ई. में जब श्रीमाँ काशी में थीं, तब वहाँ पर राजा महाराज, महापुरुष महाराज और हरि महाराज भी थे। विज्ञान महाराज इलाहाबाद (प्रयागराज) से दर्शन करने आये थे। लाटू महाराज उस समय काशी में ही थे, फिर भी वे आश्रम में नहीं रहते थे। आरम्भ में वे कुछ दिन अद्वैत आश्रम, काशी में थे। उनके द्वारा दिनचर्या में बँधकर चलना सम्भव नहीं होता था। उनका साधन-भजन किसी निर्दिष्ट समय या नियम द्वारा परिचालित नहीं होता था। इसीलिए वे बाहर किराये के मकान में रहते थे। कई भक्त उनकी सेवा करते थे। वे तपस्वी थे। बेलूड़ मठ में भी नहीं रह पाये थे। जो भी हो, काशी में भक्तगण उनकी अच्छी तरह सेवा करते थे और कभी-कभी वे सत्संग करते थे।

एक दिन लाटू महाराज ने भक्तों से कहा, ''कल प्रात:काल मैं बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने जाऊँगा। तुमलोग पूजा के लिए फूल-बेलपत्ता ले आना।'' अगले दिन भक्तगण फूल, बेलपत्ता लेकर उपस्थित हुए। वे उनलोगों के साथ रास्ते पर निकले। मुख्य मार्ग पर आकर अकस्मात् उनके मन में क्या आया, उन्होंने कहा, ''चलो, पहले माँ के पास जाते है।'' छोटे बच्चे जैसा वे माँ, माँ करने लगे। लाटू महाराज लक्ष्मी निवास के ऊपरी तल्ला में श्रीमाँ के कमरे के सामने आकर न जाने कैसे हो गये ! काँपते-काँपते श्रीमाँ के चरण-कमलों में पुष्पांजली देकर अश्रु विसर्जन करने लगे। उस समय श्रीमाँ लाटू महाराज के सिर पर हाथ फेरने लगीं। प्रत्यक्षदर्शी श्रीविभूति बाबू ने लिखा है, ''यह दृश्य अतीव मनोरम था। उस दिन श्रीमाँ से विदाई लेकर ही वे विश्वनाथ मन्दिर के लिए गये थे। लाटू महाराज अपनी मातृभक्ति जान-बूझकर गुप्त रखते थे।''

स्वामी अपूर्वानन्द जी अनेक वर्षों से काशी अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे। उन्होंने श्रीमाँ की इस मूल्यवान घटना को बताया, जिसे मैंने टेप में रिकॉर्ड कर लिया था तथा उन्होंने अपनी पुस्तक *जननी श्रीसारदादेवी (बँगला)* में इसे लिपिबद्ध किया था।

श्रीरामकृष्ण मन्दिर, अद्वैत आश्रम, काशी

१९१२ ई. में श्रीमाँ अन्तिम बार काशी आयीं थीं। अद्वैत आश्रम के ऊपर उनकी विशेष कृपादृष्टि थीं। वे जब भी आश्रम में आतीं, पहले ठाकुर को प्रणाम करतीं और ठाकुर मन्दिर में कुछ समय तक बैठती थीं।

वे अद्वैत आश्रम में अन्तिम बार कोलकाता जाने के दो-तीन दिन पूर्व दस बजे के आसपास आयी थीं। पूर्व व्यवस्थानुसार स्वामी शान्तानन्द जी उस दिन श्रीमाँ के साथ थे। आने के बाद ही श्रीमाँ ठाकुर मन्दिर में गयीं और द्वार बन्द कर दीं। बाद में मालूम हुआ, वे उस दिन अपने आँचल में ढँककर अपना फ्रेम किया हुआ एक छोटा चित्र ले आयी थीं। अन्दर जाकर उन्होंने ठाकुर को प्रणाम किया और ठाकुर मन्दिर के पूर्व दिशा में दीवार पर जो खाली जगह थी, वहाँ पर अपने चित्र को रखकर, वस्त्र में गाँठ बाँधकर फूल-बिल्वपत्र जो लायी थीं, उससे अपने चित्र की पूजा कीं तथा कुछ देर पश्चात् ठाकुर के मन्दिर से

बाहर आकर चन्द्र महाराज को बुलाकर कहा, ''चन्द्र बेटा, दीवार में जो चित्र है, उस पर भी प्रतिदिन फूल चढ़ाकर पूजा करना।'' चन्द्र महाराज ने श्रीमाँ को प्रणाम करके उनके आदेश को शिरोधार्य किया। इस ओर श्रीमाँ आयीं हैं, समाचार सुनकर अन्य सब साधु उनको प्रणाम करने आये और श्रीमाँ ने सभी को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् श्रीमाँ लक्ष्मी-निवास वापस चली गयीं।

श्रीमाँ के चले जाने के पश्चात् चन्द्र महाराज ने ठाकुर मन्दिर में जाकर देखा कि श्रीमाँ खाली दीवार में स्वयं का चित्र पूजा करके रख गयी हैं। यह देखकर उन्होंने महापुरुष महाराज से कहा। उन्होंने भी ठाकुर मन्दिर में आकर देखा कि दीवार की खाली जगह में श्रीमाँ का चित्र है। उन्होंने तत्क्षण ही ठाकुर और श्रीमाँ को प्रणाम किया और सेवाश्रम में जाकर महाराज को बताया। महाराज ने सब बातें सुनकर दुख प्रकट करते हुए गम्भीर होकर कहा, ''तारक दादा, लक्षण अच्छा नहीं है। ऐसा लग रहा है कि श्रीमाँ महासमाधि में लीन होने की तैयारी कर रही हैं।''

हरि महाराज भी सेवाश्रम में ही थे। महापुरुष महाराज ने उसी समय हरि महाराज को भी सब बात बतायी। यह सुनकर उन्होंने गम्भीर दुख प्रकट करते हुए कहा, ''महामाया की इच्छा पूर्ण होगी।'' उसी समय से अद्वैत आश्रम, काशी में श्रीमाँ की चित्र पूजा चली आ रही है। अद्वैत आश्रम, काशी में श्रीमाँ की चित्र पूजा की बातें महापुरुष महाराज से सुनी हुई हैं। उन्होंने १९२८ ई. में बातों-बातों में केदारबाबा को बताया था। परवर्ती काल में हमलोगों ने योगीन महाराज, शान्तानन्द महाराज इत्यादि से भी सुना है।

स्वामी अपूर्वानन्द जी महाराज दीर्घकाल तक महापुरुष महाराज के सेवक थे। उनके द्वारा रचित महापुरुष शिवानन्द, शिवानन्द वाणी, शिवानन्द पत्र-संग्रह, स्वामी शिवानन्द स्मृति-संग्रह, सत्प्रसंगे स्वामी विज्ञानानन्द इत्यादि ग्रन्थ अतुलनीय हैं। १९९० ई. में जब मैं काशी गया, उस समय अपूर्वानन्द जी महाराज को देखा कि वे सेवाश्रम के अस्पताल में सोये हुए हैं। उसी वर्ष ११ अक्तूबर को उन्होंने शरीर-त्याग कर दिया। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४६५ का शेष भाग

रहते, तो महाराज क्या बोलते, जानते हो? वे कहते, एक जगह गया, वहाँ पानी बहुत अच्छा था, जो खाता पच जाता। लेकिन कोई कुछ नहीं लाता था। एक दूसरी जगह गया, वहाँ का पानी इतना खराब था कि जो भी खाता, मानो पेट में जम जाता था। कुछ भी हजम नहीं होता था, वहाँ स्तूपाकार भोजन आता था !'' यह कहकर महाराजी अपने प्रथम मठ-जीवन की बातें कहने लगे – ''ढाई ही रोटी मिलती थी। उसमें भी कुछ कुत्ते को देना होता था। ओह, वह भी कैसी अवस्था बीती है ! काशी में एक घर की छत से १४/१५ टिकट फेंके जाते थे। मारामारी करके वही टिकट ले आकर तब सत्र में खाना होता था ! प्रतिदिन रोटी और दाल खा-खाकर लगता मानो सीने में एक मशाल जल रही है। केदार बाबा (स्वामी अचलानन्द जी) एक बार कलकत्ता आये, तो श्रीश्रीमाँ ने हमलोगों का नाम लेकर उनसे कहा था, ''केदार उन सबों को देखना !'' केदारबाबा काशी के थे। श्रीश्रीमाँ ने कहा था इसीलिए उन्होंने काशी में लौटकर हमलोगों से कहा, ''भाई, तुम लोगों के लिए क्या कर सकता हूँ?'' हमलोगों ने कहा, ''दो दाना भात की व्यवस्था कर सकते हैं?''

१५ जुलाई, १९५४

आज रात को पूजनीय महाराजजी से मैंने कहा, ''महाराज, उपेन महाराज (पूजनीय विमुक्तानन्द जी) ने आपसे पूछने को कहा है कि श्रीश्री ठाकुर का इतना ऐश्वर्य, बार-बार भाव, बार-बार समाधि हो रही है। हमलोग उनके शरणागत हैं, वे यदि कृपा करके हमलोगों को अपने इस ऐश्वर्य की एक बूँद भी दे देते, यदि क्षणभर के लिए भी समाधिस्थ कर देते, तो हम लोग धन्य हो जाते ! लेकिन वे तो देते नहीं ! क्यों?''

महाराज जी ने उत्तर दिया, ''अपना ऐश्वर्य हमलोगों को देंगे, इसीलिए तो वे यहाँ आए थे।'' ''तो कब देंगे?''

''कब देंगे यह तो उन्हीं के ऊपर निर्भर करता है। फिर भी समय तो बीता नहीं जा रहा। उन्होंने स्वयं ही तो कहा है, ''जिसने एक बार भी मन-प्राण से भगवान को पुकारा है, उसको यहाँ आना ही होगा। यहाँ जो आएँगे, उनका यह अन्तिम जन्म है ! यह अन्तिम जन्म वे किस प्रकार सफल करेंगे, यह तो वे ही जानते हैं। फिर भी सफल तो होगा ही !'' **(क्रमशः)**

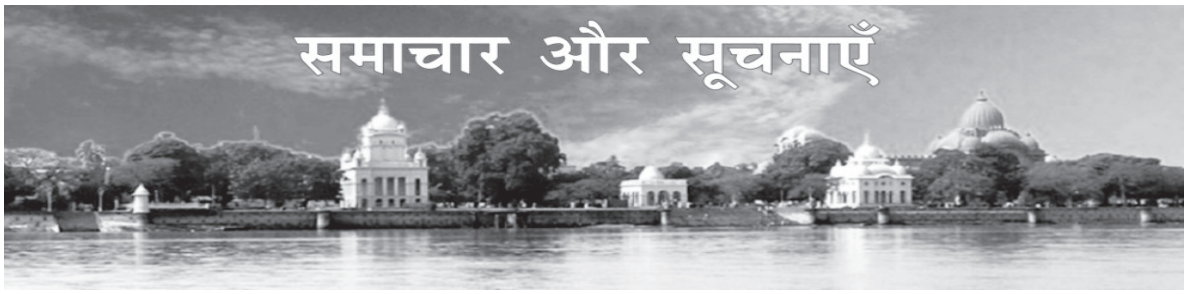

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा शैक्षणिक सहयोग किया गया

६ जुलाई, २०२२ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर द्वारा महासमुंद जिले के पटेवा ब्लाक के ग्रामीण आदिवासी ९ विद्यालयों – १. शासकीय प्राथमिक विद्यालय, पताईमाता, २. शा. प्राथमिक विद्यालय, खट्टा, ३. शा. प्रा. विद्यालय, कोकड़ी, ४. शा. प्रा. विद्यालय, रामखेड़ा, ५. शा. प्रा. विद्यालय, पटेवा, ६. शा. मीडील स्कूल पटेवा, ७. शा. मिडिल स्कूल, खट्टा, ८. शा. मिडिल स्कूल, रामखेड़ा और ९. शा. हाई स्कूल, खट्टा में ५०० बच्चों को ५०० स्कूल बैग, १००० कॉपी, ५०० स्केल, ५०० पेन्सिल, ५०० रबड़, ५०० कटर आश्रम-सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने प्रदान किया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में युवा-सम्मेलन का आयोजन किया गया

२१, जुलाई, २०२२ को, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में स्वामी विवेकानन्द और आजादी का अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में एक युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया। युवा छात्र-छात्राओं को डॉ. सुभाष चन्द्राकर, डॉ ओमप्रकाश वर्मा ने सम्बोधित किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता रामकृष्ण मठ, राजकोट के अध्यक्ष स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने की। आगत अतिथियों का स्वागत आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने किया। स्वामी विवेकानन्द और आजादी का अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में भाषण, चित्रकला, निबन्ध और देशभक्तिगीत पर विभिन्न विद्यालयों में प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई थीं। प्रतियोगिता में आये प्रथम, द्वितीय और तृतीय १६ छात्र-छात्राओं को अतिथियों के कर-कमलों से पुरस्कार प्रदान किया गया। शिविर में २० शिक्षण संस्थानों के २६२ छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

८ अगस्त, २०२२ को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर और शहीद महेन्द्र कर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर** के संयुक्त तत्त्वावधान में युवा-प्रेरणा शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ शैलेन्द्र कुमार सिंह, विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. विनोद पाठक, राष्ट्रीय सेवा योजना के समन्वयक श्री डी.एल. पटेल जी ने युवाओं को सम्बोधित किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर और **संस्कृति विभाग, छत्तीसगढ़ के संयुक्त तत्त्वावधान** में २३ जुलाई, २०२२ को विवेकानन्द राष्ट्रीय युवा-सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग ५०० युवाओं ने भाग लिया। सभा को राजकोट के स्वामी निखिलेश्वरानन्द, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द, नागपुर के स्वामी ज्ञानगम्यानन्द, भोपाल आश्रम के सचिव स्वामी नित्यज्ञानन्द, छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री भूपेश बघेल, पटना के श्री शरद विवेक सागर और डॉ. शम्पा चौबे आदि ने युवाओं को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

स्वामी विवेकानन्द पथ, पो. बेला, मुजफ्फरपुर – 842002, बिहार

फोन : 0621-2272127, 2272963

ई-मेल : - <rkm.muzaffarpur@gmail.com>,

<muzaffarpur@rkmm.org>,<Website : www.rkmsmuzaffarpur.org>

निवेदन

प्रिय मित्रो !

प्रतिवर्ष जल भराव की समस्या के कारण आश्रम की गतिविधियाँ विशेष रूप से बाधित हो रही हैं । विगत दो वर्षों में विषम परिस्थितियों के कारण चिकित्सकीय एवं शैक्षणिक सेवाएँ नियमित नहीं चल सकीं एवं उन्हें बन्द करना पड़ा, जिससे आश्रम को विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा । आश्रम पाँच महीनों तक जल-मग्न रहा । चिकित्सकीय सेवाएँ पूर्ण रूप से बन्द करनी पड़ी । आश्रम के चिकित्सकीय कर्मियों को चिकित्सालय भवन में स्थानान्तरित करना पड़ा, कई लीची के पौधे सूख गये, आश्रम की चारदीवारी कई स्थानों से क्षतिग्रस्त हो गयी ।

अतः आपसे निम्नांकित कार्यों में सहयोग प्रदान करने का अनुरोध है ।

	आवश्यकताएँ	**राशि**
1.	मिट्टी भराई	05 लाख
2.	प्रांगण सड़क निर्माण	30 लाख
3.	चारदीवारी निर्माण	30 लाख
4.	सहायक चिकित्सा भवन का निर्माण	04 करोड़
5.	चिकित्सकीय उपकरण	60 लाख

खातेदार का नाम - रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर
बैंक का नाम - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया
खाता संख्या - 10877071752
IFSC कोड - SBIN0006016

आपके और आपके परिजनों के लिए प्रभु से प्रार्थना सहित

प्रभु सेवा में आपका
स्वामी भावात्मानन्द
(सचिव)